निर्मल वर्मा के यात्रा-संस्मरण

(एम0फिल0 (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

शोध-निदेशक
प्रो0 श्री मैनेजर पांडेय

शोध-छात्र
दिलीप कुमार गुप्त

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

दिसम्बर 1996

स म र्पि त

माई

बाबूजी

और

'हेड सर'

को

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

03 जनवरी, 1997

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री दिलीप कुमार गुप्त द्वारा प्रस्तुत 'निर्मल वर्मा के यात्रा - संस्मरण' शीर्षक लघु शोध-प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इसके पूर्व इस विश्वविद्यालय या किसी भी अन्य संस्थान में, किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है। यह श्री दिलीप कुमार गुप्त की मौलिक कृति है।

अध्यक्ष
भाषा संस्थान
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110 067

प्रो. मैनेजर पांडेय
शोध - निदेशक
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110 067

प्रथम-शब्द

निर्मल वर्मा को पढ़ते हुए लगा -- कहीं कुछ है, खास, जो संप्रेषित तो हो रहा है पर जिसे कह देना मुश्किल है। मैंने एक कोशिश-भर की है कि अपने अनुभवों को शब्द दे दूँ। मैं मानता हूँ कि ठीक-ठीक किसी रचना का वह पाठ संभव नहीं है जो रचनाकार का अभिप्रेत रहा होगा। साथ में यह भी, कि ऐसा कोई पाठ विश्वसनीय नहीं हो सकता जो रचना को स्वीकृत न हो।

पहले अध्याय में कई तरह की बहसें गहरा आई हैं। अप्रासंगिक होने के भय से प्रायः संकेत-मात्र करके बढ़ चला हूँ। आलोचना के सम्बन्ध में स्वयं निर्मल वर्मा की क्या दृष्टि है -- थोड़े में जानने का उद्यम हुआ है, चौथे अध्याय के प्रारंभ में। इस अध्याय में रचनाकार की कला-क्षमता को देख पाने की भरसक कोशिश की है। अन्तिम दोनों अध्यायों में एक नये शोधार्थी का उत्साह है, जिसकी परिणति अनेक आलोचनात्मक निर्णय लेने के दुस्साहस में हुई है। यह अभिनन्दन ग्रन्थ नहीं है — धूप-छाँह, जहाँ जो कुछ अपनी अपरिपक्व दृष्टि से देखता रहा, कह दिया है। शोध की परिधि में यद्यपि यात्रा सम्बन्धी साहित्य है पर निर्मल जी को समग्रता में समझने का आग्रह है। मुझे लगता है कि निर्मल वर्मा के यात्रा-साहित्य के साथ यात्रा-वृत्तान्त की परिभाषा भी बदली है। मैंने 'यात्रा - संस्मरण' का प्रयोग करके इसी भिन्नता को अपनाने का प्रयास किया है। इनके यात्रा-साहित्य पर शायद अब तक लिखा नहीं गया। साथ ही, यात्रा-साहित्य की आलोचना के उपकरण भी बने नहीं हैं। एक बड़ी चुनौती थी। इसलिए भी, यह स्वीकार सिर्फ विनम्रता नहीं कि चूक गया हूँ, कई जगह।

निर्मल जी से मिला भी, और लगा कि रचना में हर जगह बाँधने वाली आत्मीयता कृत्रिम नहीं है, व्यक्तित्व से ही निःसृत हुई है। वहाँ अपनी लघुता, हीनता के अहसास में नहीं बदलती। बातचीत का एक संक्षिप्त रूप ही यहाँ आ पाएगा। उन्होंने कहा कि किसी दूसरी जगह जाने पर तमाम चीज़ें हमारे परिचय क्षेत्र में आती हैं -- लोग, प्रकृति, आपसी रिश्ते ... ये तमाम चीज़ें पहले नहीं थीं। इस नूतन परिचय को हम बाँटना चाहते हैं।

उन्होंने बताया कि जिस समय जर्मनी आदि की यात्राएँ सम्पन्न हुईं, उस समय वे देश असाधारण राजनीतिक परिवर्त्तनों से गुज़र रहे थे। उन असाधारण परिवर्त्तनों से दो-चार होना, उन्हें महसूस करना, जीवन की एक बड़ी घटना है। इन यात्राओं को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है।

कुछ देशों में, बस कुछ ही रातें गुज़रीं। अतः उनके बारे में किसी निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं रहा। कुछ देशों में लम्बा समय गुज़रा और वहाँ के जीवन के बारे में एक निष्कर्ष पर पहुंचने की कोशिश हुई है। मेरे यह पूछने पर कि एक अच्छा यात्रा संस्मरण कैसा होना चाहिए, उन्होंने कोई परिभाषा न देते हुए यह कहा कि इसमें पाठक एक अनूठे अनुभव से गुज़रता है जो अनुभव लेखक उस तक पहुंचाना चाहता है। जो कुछ लेखक ने देखा है, उसकी अनूठी छटा व्यक्तिगत अनुभवों से छनकर, तब एक आत्मीय रचना बनकर सामने आती है। उपन्यास और कहानी के लिए उन्होंने 'मांसल कथा-स्थल' की बात कही। जो पृष्ठभूमि हो, वह विश्वसनीय हो। मैंने 'वे दिन' को यात्रा के साथ जोड़कर एक प्रश्न किया था। इसी विश्वसनीय पृष्ठभूमि के कारण वह उपन्यास 'लगता है' कि यात्रा संस्मरण है। मैंने एक प्रश्न (शायद अगंभीर) किया कि क्या यात्रावृत्तान्त एक एलीट विधा नहीं है। मेरा ध्यान इस बात पर था कि यात्रा के लिए आज अवकाश ही किसे है। हमारी उर्जा तो जीवन की मोटी-मोटी ज़रूरतों में ही खप जाती है, फिर ये सुदूर (विदेशी) यात्राएँ कहाँ, और कहाँ उन सुखद क्षणों को पुनः जीना या शब्द देना। इसके अलावा यात्रा-वृत्त-लेखकों की सूची, पहली दृष्टि में इसी तर्क को पुष्ट करती थी। उन्होंने इसका खंडन किया। उत्सुकता चाहिए इसके लिए — यह एक लेखक की बुनियादी मनोवृत्ति होती है। इसका संसाधनों से कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरण है — कुंभ-मेले की यात्रा का संस्मरण। अनेक लेखक कुंभ जाते हैं, कितनों ने संस्मरण लिखे, कहा नहीं जा सकता। अपने बारे में उन्होंने बताया कि एक छात्र के तौर पर यूरोप की यात्राएँ की गईं और अर्थाभाव का संकट हर जगह बना रहा।

फिर, किसी दूसरे समाज को देखने की दृष्टि और उस दृष्टि के पीछे निहित कारणों पर एक संक्षिप्त चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि मार्क्स

चाहे कितने ही क्रान्तिकारी क्यों न हों, वे यूरोपीय सभ्यता को ही तो श्रेष्ठ मानते थे, भारत उनके लिए अन्धविश्वासों का देश था ... मैं चुप रहा ।

श्री मैनेजर पांडेय मेरे शोध-निर्देशक हैं — यह मुखपृष्ठ पर टंकित एक औपचारिक और सूचनात्मक अवस्थिति मात्र नहीं है, बल्कि सचेत चयन का प्रतिफलन है । उनका विश्वास लिया, अपना अधिकार ही लिया । रक्षा की, कि नहीं — वही जानें ।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में अपने शिक्षकों और मित्रों के साथ की गई गर्म और लम्बी बहसें याद हैं । उनका मैं आत्मीय बना रहा । शोध के लिए प्रस्तुत विषय के चयन में कृष्णमोहन झा साथ थे । कुछ नितान्त लौकिक समस्याएँ थीं — श्री ज्योतिष जोशी, देवशंकर झा नवीन, परितोष और चन्द्रशेखर रावल ने समाधान में अपने-अपने ढंग से सहयोग दिया । अनिल ने बहुत ख्याल रखा । इनमें किसी के साथ मेरा, धन्यवाद का सम्बन्ध नहीं है । अपने 'वे लोग', मित्र, शिक्षक — कई पुराने याद आ रहे हैं ... ।

दिलीप कुमार गुप्त

अ नु क्र म

प्रथम शब्द — पृष्ठ संख्या

अध्याय-1 — 1-15

यात्राएँ - यात्रा साहित्य

{संस्कृति : इतिहास : विचारधारा}

- अथ-इतिहास
- पूर्वग्रह-प्राच्यवाद
- संस्कृति-साम्राज्यवाद
- यात्रा व पर्यटन
- सन्दर्भ

अध्याय-2 — 16-25

हिन्दी-परम्परा

{यात्रा-साहित्य : यात्रा चिन्तन}

- सन्दर्भ

अध्याय-3 — 26-71

निर्मल वर्मा :- स्मृतियों के देश में

{यात्रा-संस्मरणों की संक्षिप्त यात्रा}

- चीड़ों पर चाँदनी
- हर बारिश में
- कला का जोखिम
- ढलान से उतरते हुए
- दो दुनियाओं के बीच

अध्याय-4 — 72-92

निर्मल वर्मा : 'अंदाज़े बयां

{भाषा-शिल्प : विशिष्टता}

- शब्द
- चित्र
- अन्तर्पाठ
- परिवेश
- लोक राग
- विशिष्टता
- सन्दर्भ

अध्याय-5 93-103

निर्मल वर्मा : एक विचार
[पर्यवेक्षण : दृष्टि]
- सन्दर्भ

अध्याय-6 104-110

अन्तिम शब्द
- सन्दर्भ

ग्रंथानुक्रमणिका 111-112

परिशिष्ट 'क' - आधार ग्रन्थ व पत्रिका
परिशिष्ट 'ख' - सहायक ग्रन्थ
परिशिष्ट 'ग' - पत्र - पत्रिकाएँ

—— अध्याय-1 ——

यात्राएँ - यात्रा साहित्य

(संस्कृति : इतिहास : विचारधारा)

--- अथ-इतिहास ---

यात्राएँ आत्मप्रसार की अभिलाषा की भौतिक अभिव्यक्ति का एक रूप हैं। प्रकृति के होने और उसे उसकी विविधता तथा विशालता में स्वीकार करने के प्रति यात्राएँ हमें तर्क देती हैं। इन्हीं यात्राओं से बोध और दृष्टि के नए क्षितिज उभरते हैं। अपने से इतर शेष दुनिया के प्रति हमारे स्थान या राग-विराग का पता इससे लगता है कि हम किस आँख से उधर देखते हैं। महत्वपूर्ण है, कि नहीं वह। यात्रा शारीरिक आन्दोलन और भौगोलिक बदलाव के साथ-साथ मानसिक संचरण ज़्यादा है। थोड़ा आगे बढ़कर कहें तो आज की बहस में सर्वाधिक मूलभूत प्रश्न के रूप में उठाया जाने वाला मुद्दा अर्थात् व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध, इसी बिन्दु से जुड़ता है। अपने को, साहित्य को व्यापक सामाजिक पक्षों से जोड़ने के लिए आत्मप्रसार तो आवश्यक ही है। भारत आते ही गांधी द्वारा भारत की यात्रा के महत्वपूर्ण पक्ष अब लोगों की समझ में आने लगे हैं। यात्रा को मैंने मानसिक संचरण भी कहा है और आचार्य शुक्ल के शब्दों में कहें तो इससे कविता के 'भावात्मक सत्ता के प्रकार का प्रसार' का कार्य सरल हो जाता है। उनका कहना है - "इस विश्व-काव्य की रसधारा में जो थोड़ी देर के लिए निमग्न न हुआ उसके जीवन को मरुस्थल की यात्रा ही समझना चाहिए।"[1] जीवन तो एक यात्रा है। इस बहुधा दुहराए जाने वाले वाक्य से कोई दार्शनिक व्याख्या निकालना मेरा अभीष्ट नहीं है। आचार्य शुक्ल के कथन के सन्दर्भ में यह कहना ज़रूरी है कि जिस तरह की यात्राओं पर बात हो रही है, उसके बिना यह जीवन 'यात्रा' तो है पर 'मरुस्थल की यात्रा' है।

राहुल जी ने घुमक्कड़ी को आदिम जिज्ञासा से जोड़ा है। प्राकृतिक आदिम मनुष्य परम घुमक्कड़ था।[2] राहुल जी के अभिप्राय की प्रमाणसिद्ध

व्याख्या करने के लिए इतिहास हमें अनेक साधन देता है । सभ्यता का विकास इसी जिज्ञासा का प्रतिफलन है । आदिम मनुष्य का जीवन मात्र ही यात्राओं के लिए अनुबन्धित था । सम्पूर्ण संसार में इसी घुमक्कड़ी और यात्रावृत्ति ने अपने कालक्रम में वह ऊर्जा, स्थायित्व और उत्कृष्टता हासिल की जिसके बल पर आदमी को इंसान होना मयस्सर होता गया । विश्व इतिहास में अनेक विचरणशील जातियों के नाम कई अध्याय सुरक्षित हैं । खानाबदोश जातियों ने इतिहास की धारा को उलट दिया है और कई देशों के संतुलित, संयमित जीवन में एक गंभीर आन्दोलन पैदा करके नए सिरे से समाज को पुनर्गठित होने और अपना शास्त्र बदलने के लिए बाध्य किया है । देशों की संस्कृति के संश्लिष्ट होने और व्यापक होने-दोनों महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं में विश्व-यात्रियों ने गंभीर दख़ल दिया है । इससे संकीर्ण राष्ट्रवादी और शुद्धतावादी प्रयासों पर रोक लगी है । यह घटना परिवर्तन की तरह स्वयं भी निरन्तर रही है । राहुल जी ने उचित ही सभ्यता तथा धर्म के प्रचार-प्रसार, दृष्टि की व्यापकता और कूपमंडूकता से मुक्ति को घुमक्कड़ी के साथ जोड़ा है । जब तक जीवन और उद्देश्यों में व्यापकता रहती है कोई भी समाज फैलता है । बृहत्तर होता है । अपने चिन्तन और अर्जित संस्कृति को प्रसरित होने के लिए मुक्त रखता है । इसके अभाव में कूपमंडूकता आ जाती है । समाज अपने को संकुचित करने लगता है । अलबरूनी जब भारत आया था तो भारतीय समाज इसी संकुचन और संकीर्णता की प्रक्रिया में था । अलबरूनी अपने समकालीनों की आलोचना तो करता है पर कहता है कि इनके पूर्वज ऐसे न थे ।[3]

सम्पूर्ण विश्व के इतिहास की बात न भी करें तो सिर्फ़ भारत से ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं जो यात्राओं के विभिन्न पक्षों को नए ढंग से खोलते हैं । सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व ही भारतीय दार्शनिकों और यूनानी दार्शनिकों के बीच वाद-विवाद के उदाहरण मिलते हैं । हमारे समाज की बुनावट इसी वृत्ति से तय होती रही है । सम्पूर्ण मध्य एशिया विचरणशील

जातियों के आन्दोलन का साक्षी है और इससे भारतीय उपमहाद्वीप के भाग्य कई बार बदले हैं । और यह प्रक्रिया मध्यकालीन भारत की प्रमुख विशेषता रही । इतिहासकार जिसे भौतिक तत्वों के संचरण की प्रक्रिया कहते हैं ; वह सभ्य समाज के प्रसरण का प्रतिफलन था । संस्कृतियों के निर्माण, नाश, परिवर्त्तन और परिवर्द्धन सबमें - यात्राओं की गहरी भूमिका रही है । यहाँ भ्रम दूर कर लेना चाहिए कि यात्राओं का सम्बन्ध केवल खाना-बदोश और अस्थायी मानव-समूहों से है । सभ्य और उन्नत मानव - समूहों के यात्राओं के सर्वाधिक परिणाम सामने आए हैं जो कि अलग से चर्चा योग्य है ।

यात्रा की 'स्पिरिट' अति प्राचीन है लेकिन यात्रा वृत्तान्त एक अद्यतन विधा है । जब लेखन कला का विकास नहीं हुआ था या ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध न थीं तो यात्रावृत्तान्त भले न लिखे जाते हों पर इनके विवरण मौजूद थे । कभी-कभी तो आंशिक या सुने हुए विवरणों के आधार पर कई कल्पित कथाएँ गढ़ ली जाती थीं । दूर-देश की कथाओं से हम परिचित हैं । कई शास्त्रीय ग्रन्थों में इस प्रकार की यात्राओं का रूढ़ि के तौर पर इस्तेमाल हुआ है । ये अलिखित विवरण सुने और सुनाए जाते थे, प्रेरणा स्रोत बनते थे और उनकी भूमिका आज से ज़्यादा अलग नहीं थी । पहले के अधिकांश कथाओं और आख्यानों में यात्राओं की स्मृतियां मौजूद हैं । कथाओं का वर्गीकरण करते हुए जिन्हें नाविक जीवन की कथाएँ कहा गया है, वे तो लगभग यात्रावृत्तान्त ही कहे जा सकते हैं ।

यात्राओं की स्मृति या पर्यवेक्षण को क़ैद करने के लिए यात्रावृत्तान्त एक शाब्दिक माध्यम है । कलाओं के कई रूप इसके माध्यम हो सकते हैं । चित्रकला, या फ़िल्म आदि । ... इनमें चित्रकला तो प्राचीनतम उदाहरण है । इतिहासकारों ने इतिहास के निर्माण में यात्रा विवरणों की भूमिका को प्रमुख स्थान दिया है । विभिन्न उद्देश्यों से जो विदेशी यात्री देश में आते रहे, उन्होंने तमाम महत्त्वपूर्ण अध्याय बनाने में सहायता दी है । यह संभव हो सका, उनके द्वारा लिखित यात्रावृत्तान्तों से । इसके अलावा

विभिन्न राजाओं या मानव-समूहों के साथ जाने वाले कवि और इतिहासकार अपने अभियानों का वर्णन लिखते थे । इन प्राप्त विवरणों में कुछ तो आज हमारी बहस के केन्द्र में आ गए हैं । इन विदेशी यात्रा विवरणों की अपनी सीमाएँ हैं लेकिन हमारे देश के इतिहास निर्माण में इन विवरणों का विवेक-सम्मत उपयोग काफ़ी उपयुक्त सिद्ध हुआ है । ख़ास तौर पर मौर्यकाल के तिथि निर्धारण में, जहाँ से देश के इतिहास का ठोस प्रारंभ होता है, यूनानी विवरणों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । सिकन्दर के साथ भारत आए इतिहासकारों के विवरण देश का तत्कालीन चित्र ग्रहण करने में हद तक विश्वसनीय हैं । मेगस्थनीज़ की 'इंडिका' का बाद के इतिहासकारों ने भरपूर इस्तेमाल किया । किसी अज्ञात घुमक्कड़ द्वारा लिखी गई 'पेरिप्लस ऑफ दि एरिथियन सी' अपने समय के व्यापार, प्रमुख बन्दरगाह और आयात-निर्यात के बारे में बताती है । टालेमी और प्लिनी ने भी भारत के सन्दर्भ में काफ़ी कुछ लिखा है । चीनी यात्रियों में फाहियान, युवानच्वांग ईचिंग और अरब यात्रियों में अलबरूनी, प्रमुख हैं । अलबरूनी का विवरण 'तहकीक उल हिन्द' तर्कसंगत और धार्मिक पक्षपात से मुक्त है और भारतीय समाज तथा संस्कृति को धैर्यपूर्वक समझने का प्रयास है ।

विदेशी यात्रियों के अलावा देश के अन्दर ही एक भाग से दूसरे भाग की यात्राओं के दौरान महत्त्वपूर्ण विवरण प्राप्त किए जाते हैं । उत्तर-मध्यकाल में या आधुनिक युग के प्रारंभ में अनेक यूरोपीय आगन्तुकों ने भारत-यात्रा के दौरान अपने अनुभव लिखे हैं । विजयनगर साम्राज्य के दौरान, इधर उत्तर में पालों, प्रतिहारों के काल में अनेक यात्रियों ने अपने विवरण लिखे हैं । यूरोप से आए यात्रियों ने अपने समय की राजनीतिक स्थिति को तो ध्यान से नहीं देखा पर सामाजिक और आर्थिक पहलुओं को ग़ौर से देखा है । फ़ादर मोंसेरात ने 1580 से 82 के काल में अकबर के दरबार का विस्तृत विवरण दिया है । इसके अलावा जनसमुदाय के जीवन को भी वह अपनी आँख से देखता है । राल्फ़ फिंच पहला अंग्रेज़ यात्री है जो भारत के लोगों के रीति-रिवाज, वेशभूषा आदि के बारे में लिखता है ।[4]

1608 से 1613 तक भारत में रहने वाले हार्किंस के विवरण को फ़ोस्टर ने 'अर्ली ट्रेवल्स इन इंडिया' में छापा था । इसी के साथ विलियम फ़िंच भी अगस्त 1608 में सूरत पहुंचा । पर्चस ने उसके ग्रन्थ "लार्ज जनरल" को सम्पूर्ण रूप में प्रकाशित किया है और फिंच के विवरण को प्रामाणिक माना है । निकोलस विथिंगटन का यात्रा विवरण "ट्रैक्टैट" नाम से 1735 में लंदन से प्रकाशित हुआ जो गुजरात के बारे में ज़्यादा कहता है । थामस रो, एडवर्ड टैरी, के बाद तेवर्नियर का उल्लेख आवश्यक है जिसने पूर्व की सात यात्राएँ की थीं जिसमें छः बार भारत की यात्रा थी । 1675 में उसका वृत्तान्त 'नुवैल रलेस्यों दयुसैराथि ग्रांसिन्योर' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ । 'मैग्नम ओपस द सिक्स वौयेजेज' अगले वर्ष प्रकाशित हुई - इन्हें अपार ख्याति मिली । अन्त में बर्नियर का उल्लेख आवश्यक है जिसके बारे में तत्कालीन फ्रेंच राजनीतिज्ञ व लेखक द मौन्तेस्यो ने सर्वाधिक सत्यनिष्ठ और क्षमतावान फ्रेंच यात्री कहा है । 1670 में "ट्रेवल्स इन दी मुग़ल अम्पायर" का प्रकाशन हुआ । मैंने सिर्फ़ कुछ उदाहरण रखे हैं जिनका सीधा सम्बन्ध हमारे देश के इतिहास से है । पूरे विश्व में इतिहास निर्माण के लिए यात्रा विवरणों का यथोचित उपयोग होता रहा है ।

लेकिन ये यात्रा विवरण सीमाओं में बद्ध हैं और यदि इनका उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से न हो तो काफ़ी भ्रामक और कभी-कभी बेसिर-पैर की धारणाएँ बन सकती हैं । रोमिला थापर ने स्पष्टतः लिखा है-"यूनानी विवरण बहुधा कल्पना के संसार में भटक गया है । बाद की शताब्दियों में भारत-विषयक अधिक जानकारी प्राप्त होने पर ही जो ज़्यादा बेसिर-पैर की कहानियां थीं, उनमें कुछ सुधार हुआ ।"[5] थापर ने सिकन्दर के नौ सेनापति नियारकस द्वारा भारत के लोगों और जगहों के वर्णन का जो उदाहरण दिया है, उससे आश्चर्य होता है - "ऐसे लोगों की चर्चा सुनने को मिलती है जो दस फुट लम्बे और छह फुट चौड़े होते हैं ... ऐसे स्थान भी हैं जहाँ आकाश से जमी हुई बून्दों के रूप में पीतल बरसता है ।"[6] इन विवरणों के बाद यह बात समझ में आती है कि हाल तक भारत की छवि क्यों

रहस्यपूर्ण और अलौकिक घटनाओं के साथ जुड़ी रही । सामान्यत: भारत का नाम आते ही कुछ बिम्ब या चित्र यूरोपवासियों के मन में उभर आते थे । जैसे - सपेरा, नट, महाराजे, जादू, नंगे साधु, अलौकिक चमत्कार दिखाने वाले दार्शनिक, आत्मनिर्भर और तुष्ट गांव तथा आध्यात्मिक आवरण से लिपटा पूरा जनसमुदाय ।

<u>पूर्वग्रह-प्राच्यवाद</u> - इसी बहस को आगे बढ़ाएँ तो यात्रा विवरणों के साथ कुछ दिलचस्प और चौंकाने वाले पक्ष सामने आते हैं । यात्रा विवरण लिखने वाले मानस का यदि विश्लेषण किया जाय, खासतौर पर समाजशास्त्रीय विश्लेषण तो पता चलेगा कि विवरण पूर्णत: मुक्त और तटस्थ नहीं हो सकते । एडवर्ड सईद ने कहीं-कहीं संकेत से और कहीं खुले रूप में यात्रा विवरण के साथ 'प्राच्यवाद' का सम्बन्ध जोड़ा है । उन्होंने एक वाक्य के माध्यम से कई उलझे सूत्रों को समेटकर निष्कर्ष के रूप में जो कहना चाहा है उसकी पुष्टि आगे भी बार-बार की है । वे कहते हैं - "प्राच्यवाद लगभग एक यूरोपीय आविष्कार था ।"[7] और ... प्राच्यवाद के कारण प्राच्य, चिन्तन के लिए एक स्वतंत्र विषय नहीं था और न है । भारत तमाम लोगों के लिए कैरियर भी था और यहाँ से जाने वाले लोगों ने अपनी डायरियों और लेखों द्वारा भारत के विषय में जो कुछ कहा उससे यूरोप पर कई तरह की धारणाएँ जमती गईं । बंगाल की लूट के धन से संपृक्त होकर क्लाइव जब ब्रिटेन लौटा तो वहाँ के लोगों ने 'नवाब' कहकर उसकी (या अन्य लोगों की भी) खिल्लियां उड़ाईं कि वे लूट और रिश्वत का पैसा लेकर लौटे हैं । लेकिन इस विरोध के पीछे ईर्ष्या ही थी, क्योंकि यह काम बाद में सबने किया और इन सबने मिलकर भारतीय संस्कृति और सभ्यता का जो चित्र 'बनाना' शुरू किया उसी का परिणाम या कुछ विचारक कहे जाने वाले नस्लवादी बुद्धिजीवियों द्वारा भारत के बारे में तिरस्कृत लेखन । चार्ल्सग्रान्ट तो भारत के लोगों को पतित कहता था । शिक्षा के मामले में 'आंग्ल-प्राच्य' विवाद में मैकाले के पक्ष की बात नहीं कर रहा हूँ बल्कि इस पक्ष को तार्किक सिद्ध करने के लिए जो आधारभूत तर्क दिए गए वे शुद्ध नस्लवादी थे । इस प्रकार 'हम' और 'वे' के बीच यूरोपीय और गैरयूरोपीय जैसी धारणाएँ विकसित की

की गई । भारत में रेलवे, कैन्टीन आदि सार्वजनिक जगहों पर 'केवल यूरोपियन्स के लिए' के बोर्ड देखे जा सकते थे । इसके अन्य उदाहरणों से हम परिचित हैं । दूसरे शब्दों में कहें तो यूरोपीय सर्वोच्चता बनाम पूर्व का पिछड़ापन एक विचार बनकर सामने आया । भारत ही नहीं पूर्व के बारे में जो विवरण प्रस्तुत किए गए उसमें उपरोक्त धारणा ने संस्कार के रूप में काम किया । एडवर्ड ने इस सन्दर्भ में लिखा है - "... वह प्राच्य के सामने पहले एक अमरिकन और यूरोपीय के रूप में आता था, बाद में व्यक्ति के रूप में"[8]

<u>संस्कृति : साम्राज्यवाद</u> - पूंजीवाद और वाणिज्यवाद से लेकर साम्राज्यवाद तक के सूत्रों का यात्राओं तथा विवरणों से सम्बन्ध अध्ययन का महत्वपूर्ण पक्ष हो सकता है । नील रेनी की पुस्तक 'फार फेच्ड फैक्ट्स' की समीक्षा में क्लाउड रॉसन ने[9] नील की इस स्थापना से ही बात शुरू की है कि खोजों के लिए की गई महान यात्राओं के पीछे प्रेरणा के रूप में, नए रूट की तलाश और पुरानी कथाओं में वर्णित स्थलों को खोजने की ललक थी । ध्यातव्य है कि यात्राओं के पीछे जिन कथाओं या पुस्तकों का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा था, वे स्वयं यात्राविवरणों से मुक्त नहीं थीं । यह अलग बात है, और इसका संकेत दिया जा चुका है कि ये भ्रामक और कभी-कभी तो पूर्णतया ग़लत चित्र लिए होती थीं । कई बार ये सिर्फ़ फैन्टेसी होती थीं । कोलम्बस और फ्लोबिशर ने अपनी यात्राओं के लिए जो वैचारिक तैयारी की थी और मार्गदर्शन लिया था, उसमें मार्कोपोलो की यात्राओं का विवरण प्रमुख है । अभी हाल में बात सामने आयी है कि मार्कोपोलो चीन नहीं गया था । आपत्ति उठाने वालों का तर्क है कि इसमें कहीं भी चीन की महान दीवार का उल्लेख नहीं किया है । तब ? क्या इसने मिथ्या ही चीन - यात्रा की कहानी गढ़ ली ? और मज़े की बात यह कि कोलम्बस इसी सही या ग़लत विवरण के आधार पर चीन जा रहा था । यह बात अलग है कि यात्राओं के दौरान कोलम्बस ने कई बार पाया और लिखा कि मार्कोपोलो या अन्य पूर्ववर्ती यात्रियों के विवरण ग़लत सिद्ध हो रहे हैं ।

यहाँ तक कि मंगोल वंश के पतन की जानकारी कोलम्बस को नहीं थी, वह खान के नाम पत्र लेकर जा रहा था ।[10]

हाल ही में अमेरिका एक और बहस का साक्षी बना । कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज को 500 वर्ष पूरे हुए और इसका उत्सव मनाने की योजना तथा योजना के विरोध से नई बातें सामने आई हैं ।[11] यह बात अलग है कि कोलम्बस के नाम पर अमेरिका का नामकरण नहीं हुआ । और नील रेनी को उद्धृत करते हुए कहें तो अमेरिगो, जिसके नाम पर अमेरिका नाम पड़ा, का विवरण 'फोर वोयेज़ेज' भी जाली है । बहरहाल, एक विशेष समूह द्वारा प्रायोजित और विशेष उद्देश्यों से की गई यात्राओं ने जिन खाजों को जन्म दिया उनसे मानव इतिहास में काफ़ी समृद्ध अध्याय जुड़े लेकिन जो बड़ी मानवीय दुर्घटनाएँ घटीं, उनपर चर्चा होनी चाहिए ।

भौगोलिक यात्राओं के पीछे 'महान' यूरोपवासियों की बौद्धिक प्यास या 'खोज की जिज्ञासा' का हाथ बताकर सारी प्रक्रिया को गौरवान्वित किया गया है । यह बात दब-दब कर बाहर आती रही कि वाणिज्य और अर्थ का दबाव इतना ज़्यादा था कि यह एक आवश्यक अभियान के रूप में सामने आया । इसका दूसरा और अधिक विकसित रूप तब सामने आया जब औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी और उद्योगों द्वारा विनिर्मित बेशुमार उत्पादों की खपत के लिए बाज़ार नहीं मिलते थे।तब, बाज़ार तलाशने के लिए महारथी यात्राओं पर निकलते थे । लेकिन, पहले और पीछे चलना होगा ।

एशियाई देश सदियों से यूरोप के व्यापारिक स्वप्न-देश रहे हैं ।[12] एशियाई देश प्रायः ऐसी चीज़ें उपलब्ध कराते थे जो या तो यूरोप के पास नहीं थीं या उनसे बेहतर थीं । इन चीज़ों से न सिर्फ़ यूरोप का सामान्य जीवन निर्धारित होता था, बल्कि जीवन के स्तर का निर्धारण भी होता था । इस व्यापार की अनिवार्यता और पूर्वी देशों तक पहुंचने के प्रत्यक्ष और मध्यस्थताविहीन रास्ते की अनुपलब्धता से उत्पन्न विवशता - ये दो ऐसे

सत्य थे जो यूरोप के मानस को मथते रहे थे । भूमध्यसागर के बाज़ारों में पूर्वी और पश्चिमी दुनिया के व्यापारी मिलते थे और इन बाज़ारों से अटलांटिक तटों तक जाते-जाते चीज़ें अपनी क़ीमतों में अत्यन्त महंगी होने को बाध्य थीं । तत्कालीन समर्थ राजतंत्रों में महत्वपूर्ण, पुर्तगाली और स्पेनी राजाओं ने इटालियन नियंत्रण से मुक्त पूर्वी दुनिया को जाने वाली राहों को खोजने के लिए नाविकों को प्रोत्साहन दिया।

'गोरे व्यक्ति का बोझ' का सिद्धान्त अपने बदले रूप में बहुत पुराना है । दुनिया भर में ग़ैर ईसाई लोग असभ्य होते थे और उन्हें सभ्यता की रश्मियों से आलोकित करने के लिए 'उदार' और 'सन्त' लोग यात्राओं पर निकलते थे । उपरोक्त नौयात्राओं के सन्दर्भ में स्पेनवासियों के मिशनरी उत्साह की भी एक भूमिका थी । आइबेरियन प्रायद्वीप में इस्लामी शक्ति पर स्पेनवासियों की विजय ने उनकी धार्मिकता को और उभारा और प्रचार-भावना को बल मिला ।

1498 में वास्कोडिगामा जब स्वप्नदेश भारत पहुंचा तो अपनी यात्रा के दौरान आए ख़र्च से साठ गुणा अधिक मूल्य के सामान लेकर लौटा । उसकी इस सफलता और नए मार्ग की खोज ने कई लोगों में एक नई आकांक्षा और पिपासा का रोमांच उभारा । महाकांक्षियों का एक प्रवाह बन पड़ा, पूर्व की ओर, और फलतः विशाल व्यापारिक और राजनीतिक साम्राज्यों की नींव पड़ी । एक और महत्वाकांक्षी कैबरल, पश्चिम की ओर चलते - चलते दक्षिण - अमेरिका के पूर्वी छोर तक पहुंचा और इस प्रकार ब्राज़ील में पुर्तगाली साम्राज्य का आधार तैयार हुआ । कोलम्बस, जिसकी चर्चा पहले भी हुई है, वह पहला यूरोपीय था जिसकी वैचारिक तैयारी में यह नव-अविष्कृत विश्वास शामिल था कि पृथ्वी गोल है । उसकी पूरी यात्रा ऐसी कथा है जो बहुत कुछ रूमानियत से भरी है । वह जब मरा तो अपनी उपलब्धियों से अनजाना था, लेकिन स्पेनी साम्राज्य का पथ प्रशस्त हो चुका था । अमेरिका, भारत की कामना से उद्वेलित साहसी यात्रियों को प्राप्त एक अनिच्छित वरदान था । यह नई दुनिया 1493 ई0 में पोप की इच्छा

और आज्ञा से स्पेन और पुर्तगाल के बीच बाँट दी गयी ।

1597–98 में जॉन केबॉट ने उत्तरी अमेरिका की अपनी समुद्री यात्रा अंग्रेज़ी सरकार के खर्चे से की । बदले में, उत्तरी अमेरिका में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई । इधर जैक्स कार्टियर ने फ्रान्सीसी सरकार को अपना प्रायोजक बनाया और कनाडा फ्रान्सीसी दावे के अधीन हो गया । कालान्तर में कुछ परिवर्त्तनों के साथ ब्रिटेन, फ्रान्स और हालैन्ड प्रमुख साम्राज्यवादी ताकत बनते गए ।

यूरोपीय विस्तारपरक मानसिकता को नयी यात्राओं और उनके (ग़लत या सही) प्राप्त विवरणों ने नई उर्वरता दी जिससे उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद तक की यात्रा पूरी होती है । दोनों बातें होती रहीं – उपनिवेशवाद (या इसकी कामना) के कारण यात्राएँ हुईं और यात्राओं के बाद उपनिवेशवाद का प्रारंभ हुआ । जब पोप ने नई दुनिया को स्पेन और पुर्तगाल के बीच बांटा तो यूरोप के अन्य देश इसे पचा न सके । अव्वल तो यह कि स्वयं स्पेन और पुर्तगाल भी 'लाइन ऑफ डिमारकेशन' का पालन नहीं कर रहे थे । शीघ्र ही, शेष अटलांटिक राष्ट्रीय राज्य भी इस होड़ में शामिल हो गए । इसप्रकार नवअधिकृत भूक्षेत्रों से आर्थिक दोहन का अपरिमित सिलसिला प्रारंभ हुआ । स्पेन की पूरी आर्थिक व्यवस्था वर्षों तक उपनिवेशों से दूह कर लाए गए सोने-चांदी के बल पर चलाई जाती रही । 1550 ई० के पहले के वर्षों में ऐसी भी स्थिति आई कि अमेरिकी सोने-चांदी के कारण यूरोप बुरी तरह प्रभावित हुआ । कुछ दिनों तक सोने की आपूर्ति इतनी बढ़ गई कि वह चांदी से भी सस्ता हो चला था ।बाद में मैक्सिको, बोलिविया और पेरू की खानों से चांदी का शोषण हुआ और फिर चांदी के भारी प्रचलन से मुद्रास्फीति तक आ गई थी । इस विचलन ने कई बड़े परिवर्त्तन किए तथा उपनिवेशों के स्वामित्व बदले ।

यात्राओं के कारण यूरोप की उत्तेजना को निरंतरता प्राप्त हुई और एक ज़िद की तरह शेष दुनिया का यूरोपीयकरण या ईसाईकरण करने की मुहिम शुरू हो गई । आज यूरोप के कई देश नस्लवाद की आग को

बुझाने या छुपाने का प्रयास कर रहे हैं । विकसित कहे जाने वाले समाज, अमेरिका में, श्वेत और अश्वेत का संघर्ष आम जीवन से लेकर साहित्य तक में झलक रहा है । पिछले महीनों अमेरिका में कोलम्बस की यात्रा को उत्सव के रूप में देखने या न देखने के पीछे जो विवाद थे उससे पता चलता है कि घाव भरे नहीं हैं । यहाँ अमेरिका सहित पूरे यूरोप में काले कहे जाने वाले लोगों के जीवन - संघर्ष और आए दिन ख़बर बनने वाली दुर्घटनाओं की चर्चा तथा व्याख्या के लिए यह स्थल उपयुक्त नहीं है । यहाँ इसके सूत्रों की तरफ़ एक नज़र डाली जा सकती है जिसका सम्बन्ध प्रस्तुत विषय से है । यात्राओं और इससे सम्बद्ध पक्षों का सबसे काला अध्याय मानव-व्यापार है । पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने अफ़्रीका में अपनी घुसपैठ शुरू की । तेजी से विकसित हो रही आर्थिक व्यवस्था में मानवशक्ति की ज़रूरत पड़ी तो नीति-अनीति के प्रश्न लुप्त हो गए । अमेरिका में (यहाँ, भारत में भी) बाग़ानों में काम करने के लिए और खेतों में खपने के लिए आम व्यक्ति शायद ही तैयार था, क्योंकि कार्य की परिस्थितियां और शर्तें न सिर्फ़ ख़राब थी बल्कि अमानवीय भी थीं । इस मांग को भरने के लिए अफ़्रीकी क्षेत्रों से मानव-व्यापार शुरू हुआ । सहज और आदिम जीवन जीने वाले लोगों को कुछ दैनिक प्रयोग की आकर्षक वस्तुएँ देकर या धूर्तता और कपट से राज़ी करके, या बलप्रयोग से मनाया गया । सैकड़ों की संख्या में, कई खेपों में काले-मानव जहाज़ों में भेड़-बकरी की तरह क़ैद करके अफ़्रीकी तटों से अमेरिकी बाग़ानों में लाए गए । इस पूरी प्रक्रिया को प्रकाशित करना या साहित्य का विषय बनाना शेष काम है । अधिकांश तो यात्राओं के दौरान रास्ते में ही दम तोड़ देते थे और शेष बाग़ानों की नारकीय अवस्था में रोज-रोज मरते थे । इन ग़ुलामों की नीलामी होती थी । दास प्रथा और दास-व्यापार पूरे यूरोप के लिए एक सुस्पष्ट, जाना पहचाना तथ्य था । तमाम विकासों के बावजूद अभी हाल में अमेरिका के एक राज्य ने अपने यहाँ दासत्व की प्रथा को औपचारिक रूप में समाप्त घोषित किया है । इतिहासकारों ने अफ़्रीका से लाए गए ग़ुलामों की संख्या के बारे में अनुमान लगाए हैं और यह अनुमान ही इसकी भयंकरता को दर्शाता है । इस व्यापार के कारण

पश्चिमी देशों का सामाजिक और जातीय स्वरूप बदल गया लेकिन उन देशों में जहाँ नए प्रव्रजित सभ्य जनों ने अपना विस्तार कर स्थानीय लोगों को अंधेरे में हमेशा के लिए धकेल दिया, एक ऐसी समस्या स्थापित हुई जो आज तक किसी न किसी रूप में मौजूद है । इस पूरी प्रक्रिया की जड़ें और शाखें दूर तक जाती हैं । यहाँ तक कि, बाद में स्पष्ट हुआ कि प्रथम विश्वयुद्ध के पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारण वह गलाकाट प्रतियोगिता थी जो उपनिवेश हथियाने के लिए शुरू हुई थी । आज भारत सहित तीसरी दुनिया के तमाम देशों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के जाल और 'ग्लोबलाइजेशन' के झुनझुने को मैं उस पुराने साम्राज्यवादी यात्रा-अभियान का नवीनतम संस्करण मानता हूँ । इसके कारण साफ़ हैं – ये 'यात्री' लोगों और समाजों को किसी विशेष मानवीय दृष्टि से नहीं देख पाते या लोगों और समाजों को उनके होने में नहीं देखते बल्कि देखने की वही चार-पांच सौ साल पुरानी दृष्टि है । इस कोण से वे एक बाज़ार की तलाश में निकलते हैं और समूचा मानवीय कार्य-व्यापार इसी बाज़ार के चश्मे से निर्धारित और प्रतिबिम्बित होता है । इस प्रक्रिया में यात्रा विवरण हैं वे पत्र और पत्रिकाएँ, जिनके पीछे इन आधुनिक यात्राओं के प्रायोजक बैठे हैं ।

<u>यात्रा व पर्यटन</u> — घुमक्कड़ी और आधुनिक पर्यटन के रिश्तों की तमाम परतों में से कुछ परतों को देख लेना भी अप्रासंगिक न होगा । देशों ने, और ख़ास तौर पर विदेशी मुद्रा के ग़रज़ू देशों ने पर्यटन को उद्योग का दर्ज़ा देकर पर्यटकों को लुभाने के कई आकर्षक पथ खोजे हैं । सरकारों ने कई शिथिलताओं को इस पथ के लिए कार्यरूप दिया है । कहना न होगा कि इस पर्यटन के दोनों रूप सामने हैं । आपसी रिश्ते कई तरह से बने-बिगड़े हैं, संस्कृति में हलचलें हुई हैं और आदान-प्रदान हुआ है, विदेशी मुद्रा की प्राप्ति हुई है । लेकिन दूसरा पक्ष चौंकाता है । संस्कृति और पर्यटन के सम्बन्धों पर विचार होना चाहिए । 'अरे यायावर रहेगा याद' की मूल चिन्ताओं में पहाड़ी मासूमियत और पर्यावरणीय शुद्धता की मैदानी हस्तक्षेप के कारण विक्षुब्धता, एक है । 'मौत की घाटी में' नामक अध्याय में अज्ञेय ने कहीं कहीं विषयान्तर होने का ख़तरा उठाकर भी इस विषय पर अपना क्षोभ व्यक्त किया है ।

अविकसित कहे जाने वाले क्षेत्रों की प्राकृतिक सुषमा से आकर्षित सैलानी जब वहां पहुंचते हैं तो यौन, संस्कृति और पर्यावरण सम्बन्धी कई नए तत्वों को भी लिए जाते हैं। अज्ञेय ने[13] एच.जी. वेल्स की एक कहानी का ज़िक्र किया है जिसमें वेल्स बताते हैं कि भविष्यत् रोग मुक्त समाज में आज का एक प्राणी जा घुसता है जो देखने में बिल्कुल स्वस्थ है, लेकिन उसके पहुंचते ही सारे देश में जुकाम फैल जाता है – क्योंकि जुकाम का जीवाणु उस देश में न होने से उसके प्रति निरापद होने की क्षमता भी नहीं थी। इसी अध्याय में अज्ञेय ने एक युवती का ज़िक्र किया है जो फ़ोटो खिंचवाने के लिए राज़ी नहीं थी – "लेकिन उससे अधिक कुछ के लिए वह अप्रस्तुत नहीं होगी, यह बात मुझपर प्रकट करने में उसने संकोच नहीं किया – उसी ढंग से जो उसे किसी पूर्ववर्ती अतिशय सभ्य – शिक्षित व्यक्ति ने पैसों की खनक के द्वारा सिखाया होगा।"[14] हमारे सामने थाईलैण्ड का उदाहरण है। पर्यटन के क्षेत्र में विकसित देश है यह, और इसी के साथ-साथ विश्व के उन सभी लोगों के लिए निरापद सेक्स का शरण स्थल भी है तथा बाल वेश्याओं का सबसे बड़ा बाज़ार। हमारे देश के कई क्षेत्रों में इस तरह की विसंगतियां समाचार-पत्रों में आईं। अभी नवीनतम विवाद है – खजुराहो में पर्यटकों को लुभाने के लिए उपलब्ध की जा रहीं सुविधाएँ। आधुनिक पर्यटन का यात्रा अथवा घुमक्कड़ी से सम्बन्ध भिन्न किस्म का है। इसके सम्पूर्ण पक्षों को, जिनका सिर्फ़ संकेत मात्र किया जा सका है, यदि बहस का विषय बनाया जाय तो बात दूर तक जाती है। ऐसा इसलिए कि इन पर्यटकों और पर्यटन 'उद्योग' के हिमायती कमोबेश वही तर्क देते हैं जो हमारे मनीषी, घुमक्कड़ी के लिए दे गए। इसी के नाम पर सुविधाएँ भी उपलब्ध की जाती हैं। मसलन 'करोड़पति' होटलों को कुछ करों में दी जाने वाली छूट और प्राथमिक सुविधाओं में दी जाने वाली वरीयता। साथ ही, सांस्कृतिक-ऐतिहासिक विरासतें भी छेड़छाड़ का शिकार हो रही हैं।

अस्तु। यात्राओं का सशक्त पहलू यह है कि ये जीवन्तता की बोधक हैं, मनुष्य की प्रकृति का हिस्सा हैं। और, यात्रा संस्मरण – उसी मनुष्य के स्वभाव या प्रकृति की अभिव्यक्ति हैं क्योंकि अपने अनुभवों को बाँटने की इच्छा मनुष्य में सदा बनी रही है।

———xx———

--- सन्दर्भ ---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, पहला भाग {1992}, पृष्ठ-96 ।
2. राहुल सांकृत्यायन, घुमक्कड़ शास्त्र ।
3. 'अलबरूनी' ऐतिहास लेखन की प्रवृत्तियां नामक अध्याय, मध्यकालीन भारत, खण्ड-1, पृष्ठ-558 ।
4. मध्यकालीन भारत, खण्ड-2, स.-हरिश्चन्द्र वर्मा, पृष्ठ-612, आगे के विवरण के लिए भी यही अध्याय ।
5. रोमिला थापर, भारत का इतिहास {1981}, पृष्ठ-43 ।
6. " " " "
7. Edward W.Said, Orientalism, P.-1
8. " P.-11
9. TLS, July 26, 1996
10. " " "
11. 1992 में समारोह और विरोध दोनों के दृश्य अमेरिका में मिले ।*
12. विश्व इतिहास या यूरोप का इतिहास लिखने वाले लगभग सभी इतिहासकारों ने विस्तार से इस पर लिखा है कि साहसिक यात्राओं का व्यापार-वाणिज्य से और आगे के प्रत्ययों से क्या सम्बन्ध था ।
13. अज्ञेय, अरे यायावर, रहेगा याद ? दूसरा सं., पृष्ठ-138 ।
14. ''" , पृष्ठ-139 "

* Minesota University में एक उपहासात्मक न्यायालय का दृश्य प्रस्तुत किया गया जिसमें कोलम्बस को मानवता के विरुद्ध हत्या, दासप्रथा, बलातश्रम, अपहरण, बलात्कार, यातना, हिंसा और जातिसंहार जैसे अपराधों के लिए अभियुक्त ठहराया गया । देखें, अरुण कुमार सिंह का लेख " The Sorry Plight of Tribals" पायनियर, 12 सित. 1996

-- अध्याय-2 --

हिन्दी परम्परा
﴾यात्रा - साहित्य : यात्रा - चिन्तन﴿

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को गद्य साहित्य के आविर्भाव से जोड़ा गया है । आचार्य शुक्ल ने यह कहकर कि [1] 'हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड़ रहा था उसे उन्होंने ﴾भारतेन्दु﴿ दूर किया', थोड़े में एक बड़े परिवर्तन की ओर संकेत किया है । साहित्य के जीवन से जुड़ने का अर्थ ही था, जीवन की व्यापकता, विविधता और स्मृतियों का साहित्य में आना । यही कारण है कि इस अवधि में गद्य की कई नई विधाएँ उभर चुकी थीं । यात्रावृत्तान्त का शैशव-काल यही है । सूत्रधार भी वही -- भारतेन्दु । भारतेन्दु की यात्रा-वृत्तान्त से सम्बन्ध रखने वाली तमाम रचनाएँ 'कवि वचन सुधा' के 1871 से 1879 तक के अंकों में बिखरी हैं । 'सरयूपार की यात्रा' लखनऊ की यात्रा, 'हरिद्वार की यात्रा', आदि के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं । समय के दबाव और परिवेश के प्रति जिज्ञासा तथा देश को करीब से जानने की अभिलाषा से अपने युग के उत्तरदायी लोग जड़ता से मुक्त हुए । इसी प्रक्रिया में प्रसरण हुआ और साहित्य में नया अंग जुड़ा । भारतेन्दु व उनके सहयोगियों में जो लोक के प्रति अनुराग और ज्ञान था तथा जो जिन्दादिली थी, उसके एक कारणों में, उनका भ्रमणशील जीवन भी रहा । जनकपुर की यात्रा के समय भारतेन्दु का साथ अंग्रेज़ों से हो गया । यह 'साथ' क्या था, 'सामना' था । इसका भारतेन्दु ने दिलचस्प विवरण दिया [2] -- "﴾रेल के डिब्बे में﴿ रात में पानी की बौछार भीतर आई । साहब ने जानबूझकर पूछा -- "यह पानी क्या आपने बहाया है " । ﴾हैब यू मेड वॉटर﴿ मैंने कहा -- "मैंने नहीं भगवान ने ﴾नाट आई बट गाड﴿"। भारतेन्दु के यात्रा विवरणों में विनोदी स्वभाव, लोकानुरक्ति, व्यंग्य तथा हास का प्राचुर्य है । इस युग की पुस्तकाकार कृतियों में श्रीमती हरदेवी की 'लन्दन यात्रा' ﴾1883﴿ का नाम पहले-पहल लिया जा सकता है ।[3] अन्य लोगों ने भी यात्राओं पर लिखा है । देश की यात्रा के सम्बन्ध में तीर्थस्थानों से अधिक जुड़ाव देखा जाता है । चूंकि यह शैशवकाल था, इसलिए स्वभावतः

एक विधा के तौर पर यात्रावृत्तान्त बहुतायत मात्रा और गुणवत्ता में नहीं पाए जाते । भाषा और शैली लगभग वही है जो गद्य की अन्य विधाओं में है । इनमें लोकरंजन और हास्यव्यंग्य की गहरी उपस्थिति के कारण आज भी इन्हें चाव से पढ़ा जा सकता है ।

द्विवेदी युग में यह परम्परा चली और कुछ महत्त्वपूर्ण यात्रा विवरण लिखे गए । अधिक रचनाएँ पहले पत्रिकाओं में निकलीं क्योंकि यह युग पत्रकारिता की दृष्टि से, भौतिक विकास में, पूर्वयुग से आगे था । श्रीधर पाठक का 'देहरादून - शिमला यात्रा' मर्यादा के जून - सितम्बर, 1913 के अंक में निकला था । गोपाल राम गहमरी का 'लंका-यात्रा का विवरण' और ठाकुर गदाधर सिंह का 'चीन में तेरह मास (1902) तथा 'हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा' (1903-4) पुस्तकाकार रूप में महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हैं, ठाकुर गदाधर सिंह ने अपनी पहली कृति में चीन के लोकजीवन में भी उतरने की चेष्टा की है । इस युग के यात्रा-साहित्य को सर्वश्रेष्ठ योगदान स्वामी सत्यदेव परिव्राजक से मिला । 'मेरी कैलास-यात्रा' में उन्होंने कैलास मानसरोवर तथा हिमालय के मनमोहक प्राकृतिक वैभव का चित्रण किया है । बाद के दिनों में भी इनके यात्रावृत्त निकलते रहे और इस दृष्टि से वे अपने काल में अलग पहचान रखते थे । 'यूरोप की सुखद स्मृतियाँ' (1937) में यात्राओं के विवरण के साथ-साथ देश की स्वतंत्रता की चाह भी है । 'नई दुनिया के मेरे अद्भुत संस्मरण' तथा 'अमरीकी प्रवास की मेरी अद्भुत कहानी' में इन्होंने कथात्मक शैली का उपयोग किया है और अन्य बातों के साथ-साथ अमरीकी शिक्षा पद्धति का भी वर्णन किया है । इनका लेखन 1955 के वर्ष तक चलता रहा ।

1932 में गणेश नारायण सोमानी ने 'मेरी यूरोप यात्रा' लिखी जो पत्र शैली में होने के कारण ध्यातव्य है । सेठ गोविन्द दास का 'हमारा प्रधान उपनिवेश' 1938 की रचना है । राहुल जी इसी काल में अपनी यात्राओं के विवरण देते हैं लेकिन उनका काल विस्तृत है और चर्चा भी अलग से वांछनीय है । कुल मिलाकर, जिसे हम छायावाद का काल कहते हैं, उसमें यात्रा साहित्य,

शैली की दृष्टि से विविधता प्रकट करता है । राहुल सांकृत्यायन लेखन और जीवन की सम्यक एकता के उदाहरण हैं । जीवन की एक अपरिमित जिज्ञासा तथा बड़े उद्देश्यों के लिए यायावरी का पर्याय बन जाय, तो परिणाम भी निश्चय ही बड़ा होगा । यात्रा-साहित्य में राहुल जी का महत्त्वपूर्ण योग है 'तिब्बत में सवा वर्ष' 1933 में पूर्ण हो चुका था ।

पिछले चार दशकों में यात्रा - साहित्य की विविधता, प्रचुरता और शिल्पगत समृद्धि के अनेक कारण हैं, इनमें सबसे बड़ा कारण समाज को मिली स्वतंत्रता है जिसके कारण अवसर और अवकाश दोनों उपलब्ध हुए । खुद राहुल जी ने विदेशी और स्वदेशी यात्राओं के अनेक विवरणों को लिपिबद्ध किया और पचास के दशक तक लिखते रहे । राहुल जी के यात्रा विवरण भौगोलिक पृष्ठभूमि, स्थानीय इतिवृत्त, उस स्थान विशेष की ऐतिहासिक महत्ता, जनजीवन, प्राकृतिक सुषमा आदि का परिचय कराते चलते हैं । स्थानों के नामों की व्युत्पत्तियां और अंचल के सांस्कृतिक - सामाजिक सन्दर्भों को लिखना वे नहीं भूलते । इन सबमें उनकी शोध वृत्ति झलकती है । राहुल जी के यात्राविवरण अपने कथ्य में महत्त्वपूर्ण हैं, कहने के ढंग में नहीं । मोटे शब्दों में कहें तो इनमें कलात्मकता का अभाव है, विवरणों का कहीं-कहीं इतना प्राचुर्य है कि प्रवाह में बाधा आ जाती है ।

इस कालावधि में सोवियत रूस से निकटता का साक्ष्य यात्रा - साहित्य भी प्रस्तुत करता है । रूस की यात्रा के सन्दर्भ में अनेक विवरण लिखे गए । 1952 में राहुल जी की रचना 'रूस में पचीस मास' उनकी तीसरी रूस-यात्रा का विवरण है । पंडित नेहरू ने 53 में आंखों देखा रूस में रूस को सराहते हुए उसके विकास को चित्रित किया है । यशपाल ने पूंजीवाद और समाजवाद के विवाद को 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' में अपने ढंग से रखा है । रूस को ही डा० नगेन्द्र ने 'तंत्रालोक से यंत्रालोक तक' में अपनी विश्लेषणात्मक नज़र से देखा है । भगवतशरण उपाध्याय ने चीन में प्रवास के दिनों लिखे पत्रों को रचना का तानाबाना बनाया है 'कलकत्ता से पेकिंग (1953) में और 'वह दुनिया' में कई देशों की यात्राओं का वर्णन रेखाचित्रात्मक शैली में किया है । इसीप्रकार कई देशों की यात्राओं का विवरण डायरी शैली में रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'पैरों में पंख बांधकर' में दिया

है । रामधारी सिंह दिनकर ने 'देश-विदेश' (1957) तथा 'मेरी यात्राएँ' (1970) में देश और विदेश-दोनों का वृत्त दिया है । 'गोरी नजरों में हम' प्रभाकर माचवे की कृति है जिसमें गोरे लोगों की मानसिक बुनावट को यहाँ के सन्दर्भ में समझने का प्रयास है । विष्णु प्रभाकर यात्रा - साहित्य के महत्वपूर्ण लेखक हैं । 'आवारा मसीहा' की रचना उनकी लेखनी से हुई, यह संयोग मात्र नहीं है । 'हँसते निर्झर : दहकती भट्टी' में उनके व्यक्तित्व के कई रूप स्थान-स्थान पर मुखर होते हैं । कहीं वे कवि, कहीं दार्शनिक या कहीं दर्शक के रूप में प्रधान पात्र बन जाते हैं । यद्यपि लेखक, भूमिका में अनुभूति के चित्र प्रस्तुत करने की प्रतिज्ञा करता है फिर भी ज्ञानात्मक उपयोग की दृष्टि से इनका उतना ही महत्व है । 'ज्योतिपुंज हिमालय' में उनकी आस्था प्रबल हो गई है ।

मोहन राकेश एक सशक्त रचनाकार हैं -- इसका पता उनके यात्रा-साहित्य से भी चलता है । उन्होंने यात्रावृत्तों को सृजनात्मक उपलब्धि का आकार दिया । उनका कथाकार रूप यात्रावृत्तों को रोचकता देता है ।

इन विवरणों में उन्होंने भारतीय जन और समाज के बड़े ही यथार्थ और मर्म को स्पर्श करने वाले चित्र दिए हैं । 'आखिरी चट्टान तक' (1953) में वे यात्रा के साथ-साथ विभिन्न मुद्दों पर कई मर्मस्पर्शी चर्चाएँ करते हैं । मुनि कान्तिसागर ने पुरातत्व, इतिहास और अतीतराग के कई तन्तुओं को महसूस करके 'खोज की पगडंडियाँ' (1953) और 'खण्डहरों का वैभव' में व्यक्त किया है । डा० रघुवंश ने हजारीबाग की यात्रा का संवेदनात्मक चित्रण 'हरी घाटी' में इस कदर किया है वह एक महत्वपूर्ण रचना हो गई है । स्थानीय भाषा, तत्व और परिवेश से ऐसा ही तादात्म्य प्रभाकर द्विवेदी ने 'पार उतर कहँ जइहों' में दिखाया है । इस समय अन्य भाषाओं में लिखे गए यात्रावृत्तों का अनुवाद भी होता रहा ।

निर्मल वर्मा के यात्रावृत्तान्त 'चीडो पर चांदनी' के अलावा कई पुस्तकों में छिट-पुट बिखरे हैं । अज्ञेय ने यात्रा को चिन्तक और रचनाकार दोनों की आंखों से देखा है तथा एक आत्मीय कलात्मकता से प्रस्तुत किया है । 'एक बून्द सहसा उछली' (1960) में पाठक अज्ञेय के साथ न सिर्फ

यूरोप के महत्वपूर्ण स्थानों की यात्रा करता है बल्कि साहित्य, कला और संस्कृति महत्वपूर्ण विवादों, चिन्तन और जानकारी से दो चार होता है। 'अरे यायावर रहेगा याद' §1953§ में असम से पश्चिमी सीमा प्रान्त तक अज्ञेय भौगोलिक विचरण के साथ-साथ मानसिक संचरण भी करते हैं। यात्रा वृत्तान्तों में नई-नई रचनाएँ जुड़ रही हैं। विविध पक्षों में बदलाव हुए हैं और इस प्रकार इस विधा ने अपनी पहचान बना ली है। संकेत में कहें तो इस विधा में 'यात्रा-विवरण' से 'यात्रा संस्मरण' तक की यात्रा हुई है।

यात्रा संस्मरण एक खास तरह की अनुभूति से संपृक्त होते हैं जिनमें भौगोलिक तथ्यों का कुछ अधिक योगदान नहीं होता। साहसिक कथाओं, शिकार कथाओं की-सी रोमांचकता और नवीन भौगोलिक परिज्ञान से परे यात्राओं के संस्मरण में कुछ उलझी हुई और 'अस्थूल' अनुभूतियां होती हैं जिन्हें ठीक-ठीक कह पाना मुश्किल लगता है। इन्हीं अनुभूतियों को अपने ढंग से रचनाकारों ने भी शब्द देने की कोशिश की है। अज्ञेय की एक कविता उद्धृत करने योग्य है [4]--

"मैंने देखा :
एक बून्द सहसा
उछली सागर के झाग से -
रँगी गई क्षण-भर
ढलते सूरज की आग से।
- मुझको दीख गया :
हर आलोक-छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग़ से।"

DISS
O,152,6,N3,V:9(U,8)
152N6
TH-6317

इसीलिए अज्ञेय का मानना है "[5]इस प्रकार क्रमागत 'बेसरोसामान' हो जाने में सन्यास की नाटकी तीव्रता या आत्यन्तिकता नहीं है लेकिन इससे मिलने वाले हलकेपन से मुक्ति का जो बोध होता है, वह कुछ कम मूल्यवान नहीं है"। निर्मल वर्मा एक सहज कथन के माध्यम से उपरोक्त बातों को रखते हैं [6] - "महज़ साँस ले पाना - जीवित रहकर धरती के चेहरे को पहचान

पाना – यह भी अपने में एक सुख है – इसे मैंने यात्राओं से सीखा है ... "

इस सीख, बोध और दृष्टि को यात्री बाँटना चाहता है । यही तो आत्मप्रकाशन है । यात्रा संस्मरण रचनाकार को खोलते हैं । संस्मरण और अनुभव बन्द होते हैं कहीं -- स्मृतियों में, किसी के शब्दों में, किसी कौंध में । यात्री इन्हें खोलता है और स्वयं भी खुलता है । संस्मरणों को पढ़ते हुए हम यात्री को पढ़ते हैं । इसलिए अज्ञेय ने अपने पाठकों से कुछ अपेक्षाएँ रखी है [7] । "यात्रा संस्मरण के सहारे की गई प्रत्येक पाठकीय यात्रा उतनी ही विशिष्ट होती है, जितनी लेखक की यात्रा रही । और प्रत्येक के लिए संस्मरण-लेखक के मानस में प्रवेश करना आवश्यक होता है ।" यात्राएँ भीतरी भी होती हैं । निर्मल वर्मा ने लारेन्स डरेल के शब्दों को याद किया है[8] -- "यात्राएँ हमें बाहर केवल स्पेस में ही नहीं ले जातीं, उन अज्ञात स्थानों की ओर भी ले जाती हैं, जो हमारे भीतर हैं ।" इस प्रकार यह प्रक्रिया आत्मपरक अधिक है -- जितनी लेखक के लिए, उतनी पाठक के लिए । भूगोल की सीमा के बारे में संकेत किया जा चुका है, यही सीमा टूरिस्ट गाईड के साथ है । दोनों की राह और शक्ति एक हैं । हो सकता है कालान्तर में भौगोलिक परिवर्तन के कारण यात्राएँ पुरानी कह दी जाएँ और इस प्रकार संस्मरण भी पुराने लेकिन[9] " ये पुरानी यात्राएँ मिथक के सहारे दोहरायी जाकर भूगोल के आयाम में ही नहीं, इतिहास के आयाम में भी अग्रसरण करती हैं -- देश को ही नहीं नापतीं, काल को भी नापती चलती हैं ।"

यात्रा संस्मरण हमें यात्रियों के संचित क्षणों से दो-चार कराते हैं । एक समृद्धि का अनुभव होता है । शायद यात्री भी यही चाहता है[10]... "वह उस समृद्धि में कुछ भी योग दे सके जिसके मानदण्ड आर्थिक नहीं हैं तो मैं अपने को धन्य मानूंगा ।" क्या देना चाहता है यात्री ? बाँटना चाहता है अपने क्षणों को, कहा जा चुका है । एक मुक्त और कुंठाहीन जीवन-शैली की बात करता है वह[11]..."और इसीलिए मैं कहता हूं कि हर यात्री को अपनी झोली खोलकर यात्रा करनी चाहिए, जो न मिले उसका दुख न करके जो मिले उसे समेटकर ही अपने भाग्य की सराहना करनी चाहिए । क्योंकि

यह तो मैं अपने अनुभव से जानता हूं कि सुख का अभाव कभी दुख का कारण नहीं बनता, उलटे एक नए अपरिचित सुख को जन्म देता है।" यात्रियों ने अपने-अपने ढंग से इसे व्यक्त किया है। यात्राओं में बहुत कुछ आकस्मिक होता है। मनुष्य की पूर्वनियोजित क्षमता और चाहना से इतर भी कुछ मिलता चलता है, इसके उलट भी होता है। यात्री एक साहसी उद्यमी की तरह जोखिम लेता है - कुछ पाने के लिए कुछ खोने से नहीं डरता। अपने को खुला छोड़ देता है, चकित होने के लिए, भ्रमित होने के लिए, जिज्ञासु होने के लिए। किसी निर्णय पर पहुंचने की कोई शीघ्रता नहीं - यायावर को शीघ्रता क्यों। "किन्तु जानना ही सब कुछ नहीं है। देखना, और जो देखा उसके बारे में सोचना भी बड़ी बात है। और पूर्वग्रहों को छोड़ सकना, तथा पूछने के लिए सही प्रश्नों की सूची बना लेना - यह और भी बड़ी उपलब्धि है। आज के युग में, जब 'कुछ खोजने' चलने से 'कुछ मानकर' चलने को अधिक महत्त्व दिया जाता है और जब यात्री प्राय: कुछ देखने नहीं, जो मानकर चले हैं उसकी पुष्टि पाने निकलते हैं, तब उसका महत्व और भी अधिक है। यात्री अधिक पूँजी लेकर न लौटे तो फ़ालतू अस्बाब से छुट्टी पाकर सहज यात्रा करना ही सीख आए, यही बहुत है।"[12]

एक ख़ास भौगोलिक परिधि के बारे में हम साधारण और सामान्य अनुभवों को व्यक्त करते हैं। लेकिन एक मुक्त यात्री उस क्षेत्र विशेष को अनुभव करता है - नए सिरे से। यह अनुभव शायद अध्ययन से कभी न आए कि "हर शहर का अपना आत्मसम्मान होता है। जब हम उसे पूरी तरह प्रतिष्ठा नहीं दे पाते, तो वह भी हमारे प्रति उदासीन हो जाता है।"[13] नगरों और समाजों को स्वीकार करने का एक उदार दृष्टिकोण है यह। वैसे भी हमारी रागात्मिका वृत्ति का विस्तार बहुत अधिक होता है। इसमें मनुष्य के साथ-साथ उसकी प्रकृति और भूगोल का भी स्थान निश्चित हो जाता है। मनुष्य को पहचानने के साथ-साथ दृष्टि के विस्तार को परिभाषित करते निर्जीव भौगोलिक परिदृश्य भी इसी वृत्ति के कारण पहचान पाने लगते हैं। उनकी पहचान से उनकी विशिष्टता का बोध होता है। 'कुछ शहर होते हैं, जिन्हें रफ़्त: - रफ़्त: पहचानना होता है। उनके खुले हिस्सों और बन्द झरोखों के पीछे एक रसीला, रहस्यमय लोक छिपा रहता है। वे

वे खुद नहीं खुलते । उन्हें निरावृत्त करना पड़ता है, संभल-संभलकर सधे हाथों से । ... किन्तु कुछ ऐसे नगर होते हैं, जो स्वयं हमारी देह को छूते हैं, हमें सचेत कराते हैं, स्वयं अपने से । उसकी सड़कों पर चलते हुए लगता है कि हम उसे 'डिस्कवर' नहीं कर रहे, वह स्वयं चुपचाप हमें मदद कर रहा है, खुद अपने को 'डिस्कवर' करने में ... "[14] यह खोज, यह बोध, यह प्राप्ति, सामान्य और विहंगम अनुभव से अलग होती है । कभी-कभी यह बोध निहायत विशिष्ट और आत्मपरक होता है हालांकि अति आत्मीय । "हम हमेशा एक पुराने शहर में आते हैं, लेकिन हर दिन गुज़रने के संग वह रहस्मय ढंग से नया होता जाता है और आखिरी दिन जब उसे छोड़ने लगते हैं, तब लगता है कि सचमुच में पहला दिन यही है, जब हम यहाँ आए हैं ।"[15]

यात्रा संस्मरण कभी-कभी अतीत-राग का अभिव्यक्त विस्तार लगते हैं । वैसे भी यात्रा के क्रम में हर स्थान और मौसम या हर कारवां सुख दे, जरूरी नहीं । कुछ छोड़ने का, कुछ छूट जाने का, कहीं बस जाने को, लम्बे समय के लिए, चाहना और न बस पाना - यह वापस ही लौट आने की विराग इच्छा - सबसे गुज़रना पड़ता है -- "कभी-कभी सोचता हूँ, यात्रिक का सुख सब कोई जानते हैं, दुःख अपने में अकेला छिपा रहता है ।"[16] फिर, यात्रा हो या कोई घटना, ग्रहण की प्रक्रिया, स्मृति की रचना और अभिव्यक्ति के लिए इसका आह्वान एक ऐसी आन्तरिक, कलात्मक प्रक्रिया है जो कभी-कभी और निर्मल वर्मा के लिए प्रायः भूगोल और समय से बाहर हो जाती है --" ... और तब मुझ-जैसे यायावर को - जो बरसों घर से दूर, अजनबी स्थानों में रहता आया है, यह जानकर आश्चर्य नहीं होता कि जिन-जिन स्थानों में हम रहते आए हैं, वे 'स्पेस' की दुनिया में नहीं थे । दरअसल हर स्थान एक छोटा-सा 'स्लाइस' था - हमारे बीते हुए समय की एक-एक 'इम्प्रेशन' से जुड़ी शृंखला का भाग । एक खास 'इमेज' की स्मृति सिर्फ़ एक बीते हुए लमहे का दुख है ... और पुराने घर, सड़कें, गलियां उतनी ही क्षण-भंगुर हैं, जितने-ये वर्ष ।"[17]

--------xx---------

-- सन्दर्भ --

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास ( ) पृ.-246 ।
2. भारतेन्दु समग्र, सं.-हेमन्त शर्मा, तृतीय सं. 1989, पृ. 1046 ।
3. विस्तृत सूची के लिए - डा. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास
4. एक बून्द सहसा उछली (1988)
5. वही, पृ. 4 ।
6. चीड़ों पर चांदनी, राजकमल पेपरबैक्स (1995), भूमिका में ।
7. अरे यायावर, रहेगा याद ?, दूसरे सं. की भूमिका में ।
8. चीड़ों पर चांदनी, पृ. 111 ।
9. अरे यायावर, रहेगा याद ? भूमिका में ।
10. एक बून्द सहसा उछली, निवेदन ।
11. चीड़ों पर चांदनी, पृ. - 77 ।
12. एक बून्द सहसा उछली, पृ. 4 ।
13. चीड़ों पर चांदनी, पृ. 30 ।
14. " " पृ. 111 ।
15. " " पृ. 121 ।
16. " " पृ. 50 ।
17. " " पृ. 121 ।

-------- xx ---------

--- अध्याय-3 ---

निर्मल वर्मा : स्मृतियों के देश में

{ यात्रा - संस्मरणों की संक्षिप्त यात्रा }

वैसे तो यात्रा-संस्मरणों को किसी पदसोपानिक व्यवस्था में रखना संभव नहीं है फिर भी कुछ अध्यायों को, लगता है लेखक ने डूबकर लिखा है । 'सफ़ेद रातें और हवा' में लेखक ने आइसलैन्ड को जिस तरह देखा है, वही है शायद उसके लिए एक आदर्श देश की स्थिति । यह अध्याय लेखक से अधिक समय लेता है, अधिक पृष्ठ भी - स्वभावतः उसके पास कहने को अधिक बातें हैं । 'प्राग एक स्वप्न' तो अत्यधिक मार्मिक बन पड़ा है । कहीं, सिर्फ़ होना और वहां के अपने समय को ठीक वैसे ही समझना, भोगना जैसे वहाँ का रहने वाला, एक आसान स्थिति नहीं है । इस कठिनता को साधने के कारण मार्मिकता, आ पाई है। 'बर्तराम्का : एक शाम' एक मानसिक यात्रा है - गहरी निष्ठा से संपृक्त एक कलाकार की यात्रा, एक महान कलाकार के लिए । इसी प्रकार 'चीड़ों पर चांदनी' को प्रकृति की सूक्ष्म और कलात्मक यात्रा कह सकते हैं । 'देहरी के भीतर : चेख़ॅव के पत्र' अध्याय एक साथ कई स्तरों पर बात करता है । रचना प्रक्रिया, रचनाकार के अन्तर्विरोध, रचनाप्रकृति, किसी रचना या रचनाकार के क्लासिक बनने की प्रक्रिया - आदि से जुड़े कुछ प्रश्नों की पड़ताल देखी जा सकती है । सम्पूर्ण संकलन का नाम 'चीड़ों पर चांदनी' रखने के पीछे लेखक का वही बुनियादी राग है - स्मृति । बचपन के पहले-पहल प्रेम की तरह शिमला के दिन उनके मन में उसी तरह टंके रह गए हैं जैसे कुछ आदतें रह जाती है । यात्राओं के प्रति, दूर देश के प्रति उत्कण्ठा और परिवेश के प्रति जागरूकता, प्रकृति से संवाद की चेतना - सब कुछ लेखक उन्हीं दिनों महसूस करता था, आज भी करता है । पहले, लेखक के शब्द - "शिमला के वे दिन आज भी नहीं भूला हूँ । सर्दियाँ शुरू होते ही शहर उजाड़ हो जाता था । आस-पास के लोग बोरिया-बिस्तर बांधकर दिल्ली की ओर 'उतरायी' शुरू कर देते थे । बरामदे की रेलिंग पर सिर टिकाए हम भाई-बहन उन लोगों

को बेहद ईर्ष्या से देखते रहते जो दूर अजनबी स्थानों की ओर प्रस्थान कर जाते थे । पीछे हमारे लिए रह जाते थे चीड़ के साँय-साँय करते पेड़, ख़ाली भुतहे मकान, बर्फ़ में सिमटी हुई स्कूल जाने वाली पगडंडी । उन सूनी, कभी न ख़त्म होने वाली शामों में हम उन अजाने देशों के बारे में सोचा करते थे — जो हमेशा दूसरों के लिए हैं, जहाँ हमारी पहुंच कभी नहीं होगी । तब कभी कल्पना भी नहीं की थी कि एक दिन अचानक अपने छोटे-से कमरे, ग्रामोफ़ोन, काग़ज़-पत्रों को छोड़कर बरसों 'सात समुद्र पार' रहना होगा ।" ये शब्द लेखक ने 'चीड़ों पर चांदनी' की भूमिका में लिखे हैं । इन पंक्तियों से यह अनुमान लगाना अप्रासंगिक नहीं होगा कि लेखक के भीतर कई निर्मितियां इन्हीं दिनों की स्मृति से संभव हुई हैं । पहाड़ों और पहाड़ी लोगों का दर्द, जो यात्रा-वृतान्तों में आया भी है, लेखक ने इन्हीं दिनों महसूस किया होगा । यह पूरा अध्याय 'ज्ञानात्मक संवेदन और संवेदनात्मक ज्ञान' का उत्कृष्ट उदाहरण है ।इस पुस्तक के तीन अध्याय {10, 11, 12} 'उन अर्थों में यात्रा संस्मरण नहीं हैं जैसे अन्य अध्याय हैं । चूंकि इन अध्यायों में व्यक्त अनुभव, लेखक ने यात्रा की निरन्तरता में प्राप्त किए हैं अतः इन्हें भी देख लेना अप्रासंगिक नहीं । इसके अलावा एक बात यह भी याद आती रही कि स्वयं लेखक या पाठक इस पुस्तक को यात्रा - संस्मरण के रूप में ग्रहण करते रहे हैं ।

'हर बारिश में', फ्लैप-टिप्पणी के अनुसार एक बहस की शुरूआत है और लेखक पर कोई यह आरोप नहीं लगाएगा कि वे किसी बारिश में भींगने से कतराए हों - सहमति-असहमति और बात है । इसमें संकलित ग्यारह निबन्धों में तीन मैंने छोड़ दिए हैं कि इन्हें किसी भी परिभाषा से यात्रा-संस्मरण नहीं कहा जा सकता । एक संस्मरण 'सुलगती टहनी', 'कला का जोखिम' में है तथा 'सिंगरौली - जहाँ कोई वापसी नहीं' और 'ढलान से उतरते हुए' स्वयं इसी नाम से, अर्थात् 'ढलान से उतरते हुए', नामक पुस्तक से लिया है । अन्तिम संस्मरण 'दो दुनियाओं के बीच' वागर्थ के अक्तूबर-96 अंक में प्रकाशित हुआ है । इस प्रकार 'चीड़ों पर चांदनी', जिसे लेखक ने तीन भागों में बाँटा है, से बारह निबन्ध, 'हर बारिश में' से आठ निबन्ध, 'कला का जोखिम' से एक निबन्ध, 'ढलान से उतरते हुए' से दो निबन्ध तथा 'वागर्थ' से एक निबन्ध

-- मेरे अध्ययन की परिधि में ये ही तेईस संस्मरण हैं । इस अध्याय में इन संस्मरणों में व्यक्त अनुभवों से दो-चार होना है । हर अध्याय अर्थात् निबन्ध को संक्षेप में अलग-अलग रखा गया है और उद्धरण चिह्न के भीतर आने वाली पंक्तियां स्वयं उसी निबन्ध से हैं ।

------- xx -------

ची ड़ों व चां द नी
— उत्तरी रोशनियों की ओर —

1. ब्रेख्त और एक उदास नगर

"दूर-दूर फैले हुए खेतों पर जून की उजली, उनींदी-सी धूप और भूरी मिट्टी की गन्ध। एक बोझिल-सी गन्ध, जिसमें पूरी एक मृत पीढ़ी का अतीत भरा है।"

"यह आकस्मिक नहीं कि ब्रेख्त का नाटक देखते हुए अचानक एक क्षण ऐसा आता है, जब लगता है, जैसे थिएटर की दीवार के परे बरबस कुछ आवाज़ें भटक रही हैं, दरवाज़ा खटखटा रहा है — और हम — दर्शक और अभिनेता - समूचा मंच और 'एडिटोरियम' एक अजीब दबाव तले धंसने लगते हैं - सिर्फ एक उपाय है मुक्ति पाने का - हम बाहर निकल आएँ और इन 'आवाज़ों' के साक्षी हो सकें।"

यात्री प्राग में है। सम्बन्धों की ज़िद और स्नेह से प्रेरित, वह अन्ततः आइसलैण्ड की यात्रा के लिए तैयार है। प्राग की स्मृतियों में डूबा यात्री आइसलैण्ड की भूमि के लिए चल पड़ता है जो उसके लिए 'आउटर स्पेस' की तरह है। इस यात्रा में पहला पड़ाव बर्लिन है। यह पड़ाव सिर्फ एक रात के लिए है - फिर भी लेखक की एक दबी साध तो पूरी होनी है - बर्लिन - एन्सेम्बल में ब्रेख्त का नाटक देखने की। लेखक के लिए "बर्लिन आने का सबसे बड़ा आकर्षण भी यही रहा है।" बर्लिन में लेखक इतिहास की अनुगूंजों से परिचित होता है। लेखक के लिए बर्लिन को सहज ढंग से ग्रहण करने के लिए उसे एक बार जी लेना ज़रूरी है। "... जो समय सबके लिए, यहाँ के निवासियों के लिए, बीत गया है, वह मेरे लिए अभी तक जीवित है, प्रतीक्षारत है, और जब तक मैं उसे अन्य प्राणियों की तरह भोग नहीं लूंगा वह मुझ से छूटेगा नहीं।" क्योंकि

लेखक को शिद्दत से महसूस होता है "यूरोप का यह खण्ड ज़िन्दगी के उन अज्ञात, गोपनीय रहस्यों से गुम्फित है, जिन्हें आज तक फ्रान्स, इंगलैण्ड या स्पेन ने स्पर्श नहीं किया है।" यहाँ तक कि "बमों और गोलियों के निशान अब भी वैसे ही हैं।"

लेखक ने गहरी सम्मानभावना और नियंत्रित बौद्धिक उत्तेजना के साथ ब्रेख्त की पत्नी हैलेन वेगेल से अपनी 'ऐतिहासिक' मुलाकात का ज़िक्र किया है। आइसलैण्ड से वापस आते समय भी बर्लिन में चार दिन बिताने का मौका लेखक को मिला था और इस 'अभिशप्त नगर' की एक असाधारण झाँकी देख सका था — "शीत युद्ध की इतनी नंगी, बेलौस तस्वीर शायद यूरोप के किसी शहर में दिखाई नहीं देती।" पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन के बीच सामान्य और असामान्य सम्बन्धों या सूत्रों की ओर हमारा ध्यान जाता है।

बर्लिन अन्ततः, अब भी एक उदास शहर है। इस शहर में आकर लेखक आत्मीय मित्रों के कहकहे और बीयर की गुनगुनाती रवानी के बावजूद भी इतिहास की अनुगूंजों से बच नहीं पा रहा। फिर भी, वह "ये तीन शब्द 'फासिज्म, नेवर, अगेन' बर्लिन की दीवारों पर देख सका", उसके लिए "यही बहुत कुछ है।"

—————— × × ——————

2. रोती हुई मर्मेड का शहर

"सोचता हूँ क्या बर्लिन से कोपनहेगन की यात्रा एक दूसरे स्तर पर ब्रेख्त से बैकेट तक की यात्रा ही तो नहीं है ?"

"शायद इसी चिपचिपाते आत्मसंतोष और सतहीपन की दलदल से बाहर निकलने की कोशिश की थी एक अन्य डेनिश ने, जिसे कोपनहेगन के निवासी आखिर तक सिरफिरा समझते रहे।"

स्कैण्डेनेवियाई देशों ने लेखक को कई तरह से प्रभावित किया है। इन देशों के प्रति लेखक के मन में प्रशंसा की ताप है, सिवाय कोपन-हेगन के। यह उन शहरों में एक रहा है जिनके संग कोई आन्तरिक लगाव नहीं जोड़ा जा सका। लगता है – यह "एक अमरीकी शहर है, उत्तरी यूरोप में, 'नाटो' सेनाओं का मनोरंजन-स्थल।" लेखक ने कई जगह शीत-युद्ध की अखिल-यूरोपीय बीमारी का ज़िक्र किया है। प्राग, जहाँ से लेखक की पहचान बनती है वह "बिहाईण्ड आयरन कर्टेन" कहा जाता था। यहाँ तक कि यह पद आम आदमी की भाषा का अंग बन चुका था, बिना किसी प्रयास के। लेखक ने सच ही महसूस किया है कि "मानवीय चिन्तन को, उसके सोचने समझने के ढंग को कितनी आसानी से अत्यन्त विकृत ढांचे से ढालकर सहज, स्वयं सिद्ध, स्वयंचालित 'सत्यों' का निर्माण किया जा सकता है, इसकी कल्पना शायद जार्ज आर्वेल ने अपने भयंकरतम दुःस्वप्नों में भी न की होगी।" कोपनहेगन के गिरजे 'भयावह बेडौल मकबरे' लगते हैं और यहाँ तक कि यहाँ के 'रेड-लाइट एरिया' का भी कोई निजी व्यक्तित्व नहीं है।

अन्य स्कैण्डेनेवियाई देशों ने अपेक्षाकृत कुंठामुक्त, समृद्ध और असामाजिक वृत्तियों से रहित समाज की स्थापना की है, बिना किसी आरोपित क़ानून के। यहाँ भी कोपेनहेगन अपवाद है। नार्वे के लोगों की निश्छल रसिकता लेखक को प्रभावित करती है। इसी निबन्ध में आइसलैण्ड

के भीतर झांककर देखे गए अनुभव का चित्रण हुआ है । लेखक दुख के साथ सोचता है — "हममें से कितने भारतीय 'बुद्धिजीवी' लन्दन की 'इण्डिया लाइब्रेरी' को भारत वापस लौटाने के लिए उतने ही चिन्तित हैं जितना वह उजड्ड आइसलैण्डी व्यापारी मुखर परिहास के बावजूद अपने देश की पाण्डुलिपियों के बारे में था ।" कोपेनहेगन में अपने अतीत और अतीत के अनुभवों के रूप में संचित पाण्डुलिपियों को डेनमार्क से वापस लेने के लिए जनमत एक था और यह एक राष्ट्रीय प्रश्न बन चुका था ।

कोपेनहेगन से लेखक आइसलैण्ड के लिए प्रस्थान करता है, बिताए हुए क्षणों को दुहराता हुआ । "सब कुछ पीछे रह गया है, सिर्फ़ समुद्री पक्षियों का झुण्ड अब भी जहाज़ के संग-संग उड़ता चला आ रहा है ।"

——— x x ———

3. उत्तरी रोशनियों की ओर

"और हम हैं कि हर कदम पर सदियों को पार करते जाते हैं । संग रह जाता है केवल एक आभास - रंगों और आकृतियों से उत्पन्न हुई किन्तु उससे अलग एक स्मृति ।"

"दर ... समूचा शहर बारिश में भीग रहा है ।"

छः दिन का सागर-पथ, कोपनहेगन से आइसलैण्ड तक । 'सी सिकनेस', समय के बोध का जल की अथाह राशि में भ्रमित होना और समुद्री-यात्रा

की असाधारण भौतिक-शारीरिक अनुभूतियां – बीच में कुछ घन्टों के विश्राम में स्कॉटलैण्ड और एडिनबरा, और अचानक दिखता है – "आइसलैण्ड का पहला ग्लेशियर ।"

उत्तरी सागर के अबाध विस्तार में सागर का नशा और उल्लास के बाद उदासी, चक्कर, थकान की पारी झेलने के बाद जब यात्री-दल स्कौटलैण्ड पहुंचा तो वो छोटी-छोटी चीज़े, जो आम दिनों में शायद याद भी न रहती हों, जीवन का अहसास दिलाने लगीं । पहले उन्होंने चाय पी-लगा-हाँ, इंग्लैण्ड में हैं । 'पहली बार पूरी शिद्दत से महसूस हुआ कि धरती, महज़ ठोस धरती पर चलने का भी अपना अलग सुख है । वह पैरों के नीचे कांपेगी नहीं, हिले-डुलेगी नहीं, यह ख़याल मन को अजीब सान्त्वना-सी देता है ।" आम स्कॉटिश लोग- "लगता है अँगरेज़ों की अभिजात औपचारिकता इन्हें नहीं छू गई है ।" फिर, एडिनबरा की 'आर्टगैलरी', बीते सदियों को जानने की, बन्द सदियों को खोलने की चाभियां – या ख़ुद को पुनः जानने का अवकाश ।

यात्रा फिर शुरू हुई – नये लोग भी साथ थे अब । "एकतरफा निःशस्त्रीकरण से लेकर आइख़मैन के मुक़दमे तक ... न प्रश्नों की कमी थी, न समय का अभाव ।" तरह-तरह के लोग, एकान्त-अबाध समुद्र के ऊपर एक छोटा-सा आधार, हर एक की अपनी स्मृतियां, कभी गीत का कोई क्षीण-सा स्वर, बीयर और पेय पदार्थों से ऊबे हुए ख़ाली क्षण, घोर व्यक्तिवादी लोग या मानवहित के लिए निजत्व त्याग चुके मिशन पर निकले लोग – इन्हीं में एक लड़की पूछती है – "आपका दर्शन अद्भुत है । कभी-कभी सोचती हूँ, आज के संकट का हल आपके देश में मिल सकता है ।" लेखक चुप रहता है ।

आइसलैण्ड का दूसरा ग्लेशियर दिखता है पिछले दिनों की सारी थकान, उदासी मानो ग़ायब हो गए । "आइसलैण्ड अब दूर नहीं है ।" यह वाक्य बार-बार कई तरह से दुहराया जाता है । लेखक ने स्कॉटलैण्ड में महसूस किया था -- "हम यात्री किसी भी जगह पहली बार नहीं

जाते, हम सिर्फ लौट-लौट आते हैं उन्हीं स्थानों को फिर से देखने के लिए, जिसे कभी, किसी अजाने क्षण में हमने अपने घर के कमरे में खोज लिया था । क्या यह कभी सम्भव है कि हम ओस्लो में घूमते रहें और अचानक गली के नुक्कड़ पर इब्सन के किसी पात्र से भेंट न हो जाय । या पहली बार आइफल-टावर के सामने फैली पेरिस की छतों को देखकर हमें 'अपने' पेरिस की याद न हो आए जिसे हमने बाल्ज़ाक के उपन्यासों और रजिस्तां की कविताओं से चुराकर ख़ास अपनी निजी अलबम में चिपका लिया था ।" आइसलैण्ड को देखते ही यात्री उन्हीं अनुभवों से गुज़रता है । वह पहाड़ों को समुद्र के पास देखता है तो समुद्र मात्र जलराशि नहीं, स्मृतियों की राशि दिखता है 'सागा - ग्रन्थों' की प्राचीन और कालातीत कथाएँ समेटे हुए ।

——— xx ———

4. सफ़ेद रातें और हवा

"... कोलम्बस से पांच सौ वर्ष पहले एक आइसलैण्डी वाइकिंग एरिकसॉन ने अमरीका को खोजा था और शायद अपनी शालीनता वश किसी को अपनी खोज के बारे में उसने कुछ नहीं कहा ।"

"आइसलैण्ड का स्वतंत्रता-संघर्ष इतिहास में सबसे लम्बा 'सत्याग्रह' रहा है।

आइसलैण्ड के अनुभवों को शब्द देने में लेखक ने बड़ी धीरता और सम्बद्धता दिखाई है । यहाँ आकर लेखक महसूस करता है कि दो अलग-अलग यात्री

एक ही शहर में कभी नहीं आते, जबकि शहर वही रहता है । कई अन्तर्विरोध सामने आते हैं - पहले के बनाए गए चित्र और वर्त्तमान यथार्थ के कारण । उसे आडेन के सुझाव की याद आती है कि ग्रीनलैण्ड का नाम आइसलैण्ड और आइसलैण्ड का नाम ग्रीनलैण्ड कर देना चाहिए । यही नहीं, राजधानी रिक्याविक भी कई चित्र प्रस्तुत करता है । फिर भी लेखक को रिक्याविक की हवा याद रह जाती है - वह जान पाता है कि हवा का असली जादू कैसा होता है । और लोग ? "एक ही स्थान पर इतने सुन्दर लोग किसी अन्य नगर में देखना दुर्लभ है ।" विनम्र, शालीन और चुप्पे, निश्छल लोग । स्त्रियां - सही मायने में स्वाधीन, निपट ग्रन्थिहीन और कुण्ठारहित । यह यूरोप में शायद अकेला देश है, जिसकी अपनी कोई सेना नहीं । "जिस जाति ने सिर्फ बहस करके अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की, उसके लिए कुछ भी करना असंभव नहीं" आइसलैण्ड की कम आबादी (एक लाख सत्तर हज़ार) कई कारणों से इसे तमाम कठिनाइयों से बचाती है - हर आदमी एक-दूसरे को जानता मिलेगा, अपराध के लिए सामाजिक अवकाश नहीं है । जिन आयरिश भिक्षुओं ने सर्वप्रथम इस वीरान और सूने द्वीप में अपना घर बसाया था - इसे 'हरमिट ऑव एटलांटिक' की संज्ञा दी थी । फिर नार्वेजियन आए, शरण लेने । वे यूरोप के पहले-पहले प्रजातंत्रवादी थे । "सही बात यह है कि पार्लमिन्ट की 'दादी-माँ' के दर्शन के लिए हमें आइसलैण्ड की सदियों पुरानी चट्टानों और घाटियों के बीच ही रास्ता टटोलना होगा ।" 'थिंगविलियर' (प्रथम लोकतंत्र) - यहाँ का सबसे गौरवपूर्ण तीर्थ स्थान है पर इसकी पवित्रता किसी धर्म से नहीं जुड़ी है । हज़ार वर्ष पहले रातों में एल्थिंग (आइसलैण्डी पार्लमिन्ट) की बैठक लगती थी । जिस समय यूरोप के जीवन और कला का हर अंश धर्म के बोझ से दबा था, आइसलैण्ड का साहित्य 'सेकूलर' बना रहा । इन 'सागाग्रन्थों' के लेखक, जिनका नाम हमें नहीं मालूम शायद दुनिया में पहले अस्तित्ववादी थे । ग्लेशियरों के देश आइसलैण्ड में 'हैकला' - चारों ओर बर्फ से घिरे इस पहाड़ के नीचे वर्षों से ज्वालामुखी धधकता रहा है । यही नहीं - यहाँ हमारा भूगोल

ज्ञान तर्कातीत हो जाता है जब हम जून के महीने में गिरती हुई बर्फ़ को देखते हैं ।

आधुनिक आइसलैण्डी मूर्त्तिकार आस्मुन्दुर स्वेन सॉन से अपने साक्षात्कार का अनुभव लेखक देता है । उनका कथन लेखक ने उद्धृत किया है — "आखिर दोनों ही तो – टेलीफ़ोन और मेरी मूर्त्तियाँ तकनीकी-युग की उपज हैं । क्यों उन्हें एक की ज़रूरत महसूस होती है और दूसरे की नहीं ?"

शराब के बाद यहाँ सबसे ज़्यादा पुस्तकें माँगी जाती हैं । 'लिखे शब्द' के प्रति इनमें असीम श्रद्धा है । आइसलैण्ड और यूरोप के अन्य देशों में, जो संस्कृति सम्पन्न कहे जाते हैं, एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है – यहाँ संस्कृति का अर्थ ही 'लोक संस्कृति' है । यह लोक संस्कृति जन-जीवन में, दैनिक चर्या में नमक की तरह घुली है ।

लेखक ने आइसलैण्ड को खूब महसूस किया है । उसका यायावर मन और भी उत्तर की ओर जाने को ललकता है । "उम्र नहीं रही 'हिच-हाइकिंग' करने की, वरना छाती पर 'इन्डियन' की तख्ती लटकाकर बीच चौराहे में खड़ा होने से ऐसा कौन संगदिल होगा जो 'लिफ्ट' नहीं देगा ।" लेखक बीते दिनों की स्मृति और इस साध को दुहराता हुआ 'ईगलस-हिल' की घास पर लेटा रहता है । "और सामने समुद्र है, कविता की लय की तरह रिक्याविक से जुड़ा हुआ – जो है, इसलिए कोई ध्यान नहीं देता, किन्तु जिसका न होना ध्यान के परे है ... ईगल्स-हिल ... रफ़्ता-रफ़्ता रात झुक आती है ।"

——— x x ———

5. लिदीत्से : एक संस्मरण

"और तब लिदीत्से के खण्डहरों के बीच भटकते हुए मुझे पहली बार अपने लिए 'आउटसाइडर' शब्द अजीब-सा बेमानी लगा है । टूटी हुई दीवारों के मलबे के नीचे हम सबकी आत्मा का एक अंश दब गया है ... क्योंकि जिस सदी में हम जीते हैं, हममें से हर व्यक्ति उसका गवाह है, और गवाह होने के नाते जवाबदेह भी ... "

'लिदीत्से' छोटा-सा, अत्यन्त सजीव अनुभव खण्ड है जिसे लेखक ने गहरे संप्रेषित किया है । भौगोलिक रूप से यह चेकोस्लोवाकिया का एक छोटा-सा गांव है । स्कूल के दिनों में इसकी चर्चा सुनकर लेखक ने एटलस में इसे खोजने का असफल प्रयास किया था, अब अपनी आंखों से देख आया है । "क्षण-भर के लिए विश्वास नहीं होता कि किसी ऐसे ही दिन, ऐसी ही शान्त घड़ी में, यह ख़ामोश घाटी, घाटी के ऊपर सिमटा लिदीत्से का नीला आकाश, फ़ौजी बूटों और बन्दूकों के बीच घिर गया होगा ।" 10 जून 1942 – किसी ने एक बड़े जर्मन अफ़सर को कुछ-दिनों पहले गोली मार दी थी, हत्यारा पहचाना न जा सका, शक इस गांव पर गया – छानबीन, धमकी, लालच ... व्यर्थ । अन्तत: समूल, सामूहिक संहार । देखते-देखते एक निर्दोष लोगों का छोटा-सा गांव धरती के मानचित्र से मिट गया । जो बच गया-वह सिर्फ पीड़ाओं और नाश का भौतिक रूप था । हाँ, एक इमारत थी वहाँ, जो आश्चर्यजनक उपस्थिति थी । यह म्युज़ियम है, जिसे युद्ध के बाद निर्मित किया गया था । फासिज़्म के दमनचक्र से पहले के जीवन का अनुमान लगाया जा सकता था । फिर, एक स्मारक – सामूहिक कब्र – फूल रखे

जाते हैं, जिनमें अलग-अलग देशों की गन्ध बसी है । लेखक यात्रा-दल के साथ लिदीत्से में अपनी उपस्थिति का अर्थ समझता है । लेखक को विश्वास है और हमें यह विश्वास होता है — "लिदीत्से विल लिव ।"

——— xx ———

6. बर्त राम्का : एक शाम

"'बर्त राम्का'... एक छोटा-सा शब्द, जिसका कोई चेहरा नहीं है, महज़ नाम । ... जहाँ मोत्सार्ट ठहरे थे ।"

> "किन्तु वियना में उनकी अरथी के संग केवल उनके इने-गिने मित्र ही गए थे ... एक साधारण-से क़ब्रिस्तान में उन्हें दफ़ना दिया गया । आज भी कोई नहीं जानता कि उनकी क़ब्र कहाँ है ।"

यह पूरा अध्याय एक मानसिक यात्रा है । एक कलाकार के लिए एक कलाकार की यात्रा - गहरी निष्ठा से संयुक्त । प्राग की एक चांदनी रात, 'माला-स्त्राना', जिसकी गलियों में घूमते हुए 'यान नेस्दा' के पात्र मानो सजीव हो जाएँ । 'लॉरेन्तो चेपल' - प्राग का अकेलापन बयान करती लॉरेन्तो की घन्टियां - यह स्मृतियों का अकेलापन है । एक संगीत है जो चांदनी रात में, इससे परे, स्मृतियों से भी परे केवल प्राग की हवा से जुड़ा है । "प्राग, ऐसी ही चांदनी रात की ख़ामोशी में जिसे कभी मोत्सार्ट ने देखा होगा ।" 'समर - स्कूल' के तीस-चालीस

छात्र उसी मोत्सार्ट से खिंचे 'बर्त राम्का' को देख पाने की लालसा में भिक्षुदल की तरह धीमे-धीमे चलते, जब थमते हैं तो अपने को मंत्रमुग्ध 'बर्तराम्का' के सामने पाते हैं । मोत्सार्ट की उपस्थिति, दृष्टि, स्पर्श और यहाँ तक कि साँसों की छुअन ने जिन-जिन चीज़ों को महसूस किया होगा, सीढ़ियाँ, फूलों की नीली घन्टियाँ, कॉफी-हाउस, ओल्ड टाउन का रेस्तराँ, लेखक भी महसूस करता है । मोत्सार्ट का कमरा ... उनकी चीज़ों को छूते हुए एक झिझक, एक लघुता का अहसास मन को दुविधा में डालता है । मोत्सार्ट को वियना ने नहीं प्राग ने अपनाया और प्राग का बना लिया । मोत्सार्ट का संगीत – "इसके टूटने के संग हम बिल्कुल अकेले हो जाते हैं, सर्वथा मुक्त । मुक्त और एकदम कितने अर्थहीन । संगीत कितना अर्थहीन है और, इसलिए, कितना पूर्ण ।"

धीरे-धीरे मोत्सार्ट का घर छूटने लगता है । प्राग को किसी ने 'ए सिटी ऑव थाउज़ेण्ड टॉवर्स' कहा था । उसने सच ही कहा था । पूरा शहर पुराने गिरजों की बुर्ज़ियाँ चुपचाप समेटे हुए है । प्राग के ऊपर का आकाश, लगता है इन बुर्ज़ियों पर झुक आया हो । "एक मायावी संगीत- 'माला स्त्राना' की झुकी छतों और गिरजों की उठी मीनारों के बीच रास्ता टटोलता, 'चार्ल्सब्रिज' पर सन्तों की 'बारोक' मूर्तियों के सम्मुख प्रार्थना करता हुआ – 'थाउज़ेण्ड टाइम्स वी ग्रीट दी ।'"

—— x x ——

7. पेरिस : एक स्टिल लाइफ़

"यदि सिर्फ़ एक शहर को जीवित रखने का प्रश्न है, तो मैं पेरिस को चुनूँगा ... यदि वह जीवित रहता है, तो मानव-संस्कृति को अणु-युद्ध के बाद भी पुनर्जीवित होने में ज़्यादा समय नहीं लगेगा ।"

"... नहीं, इतिहास चाहे कितनी ही ट्रेजि़क क्यों न हो, हमारी सदी में उसका प्रभाव एक सस्ते सतही 'मैलोड्रामा' से अधिक नहीं हो पाता ।"

पेरिस में शाम, शांज़लीजे, के सम्भ्रान्त रेस्तरां में दोस्तों के साथ, पेय-प्रवाह अबाध और मन भटकता रहा लेखक का, कुछ शामों और स्मृतियों की तरफ़ जो पेरिस से जुड़ी हैं । पहले महायुद्ध से पूर्व का पेरिस, जब वह देश-निष्कासित रूसी लेखकों और कवियों की टोलियों तथा अड्डों की उपस्थिति से महत्वपूर्ण था, सुर्रियलिस्ट कवियों और पापुलरफ्रण्ट का पेरिस, युद्ध के दौरान रज़िस्टा कवियों का पेरिस, कई चेहरे हैं - सेन के किनारे सदियों से साथ-साथ सरकते हुए । फिर लेखक कुछ दृश्य खण्डों को चित्रित करता है जिसमें भूगोल होता है, लेकिन पृष्ठभूमि में । 'पैलेस ऑफ जस्टिस' की विशाल इमारत के सामने लेखक एक "मौन-द्वीप" के होने का अनुभव करता है मानो वह पेरिस में एक 'स्टिल लाइफ़' के समान है । कोन्सियर्जरी की इमारत, जहाँ मेरी अन्तोय नेत बन्दी थी-आंखों के सामने कई सदी पहले का दृश्य सजीव हो उठता है - यह दृश्य उससे अलग है जो वर्साय जाने पर बनता है । मेरी का भव्य राजप्रासाद । वहाँ सचमुच लेखक के पास रोटी के पैसे नहीं हैं और वह सिर्फ़ बासी केक का टुकड़ा ख़रीद कर खा पाता है और तब इतिहास की एक प्रसिद्ध पंक्ति उसे प्रतिध्वनित होती जान

पड़ती है जो मेरी ने उच्चरित किया था । लेखक साहित्यकारों और रचनाकारों के साथ उनके रचनासंसार में प्रवेश करता है और फिर फ्रान्स को उनकी नज़र से देखता है । "विस्कोण्टी से अन्तोन्योनी - एक लम्बी यात्रा है - कुछ ऐसा ही जैसे हम दोस्तोयवस्की की अभिशप्त भूल भुलैया से बाहर निकलकर चेखव के सूने, गोधूलि से सने आँगन में चले आए हों ।" लेखक यह अनुभव करता है कि बरसों बाद जब पेरिस में बिताए दिनों को याद करने की कोशिश यदि वह करेगा तो हाड़-मांस की जीवन्त चीज़ों की अपेक्षा सैलूलॉयड पर अंकित छिटपुट बिम्ब, कैमरा की आंखों में क़ैद धब्बे ही अधिक याद आएंगे । अन्तोन्योनी, जिसने हमारी पूरी सदी के हलचल को एक व्यापक 'सायमलटेन्यटी' में पकड़ने की कोशिश की है । ल नुई - अलग-अलग झूलते संकेतों से बनी फ़िल्म को पेरिस में देखना लेखक के लिए अविस्मरणीय है ।

पेरिस बहुत कम बदला है । इल्या इहरनबुर्ग के संस्मरण पढ़ते हुए यह बार-बार लगा कि पचास वर्ष पहले के पेरिस से अब तक बहुत कम परिवर्त्तन हुए हैं । अपनी मृत्यु से चन्द महीने पहले इहरनबुर्ग से कहे तालस्टॉय के कथन को लेखक उद्धृत करता है -- "मेरी आखिरी इच्छा यही है कि मैं पेरिस सा जाऊँ ... अपना अन्तिम उपन्यास मैं वहीं लिखना चाहता हूँ ।"

फ्रेंच लोग प्रायः उत्तेजित होकर बहसें करते हैं । साथ ही, वे अपने में निर्लिप्त, दूसरों की ओर से बिल्कुल उदासीन होते हैं । वे एक साथ बहुत रसज्ञ और रूखे हो सकते हैं । फ्रान्स में बहुत कम दिन रहने का मौका मिला - इसका दुख तो है ही । शायद इसलिए फ्रान्स ठीक-ठीक अपनी समग्रता में पकड़ में नहीं आता । पेरिस के प्रति स्मृतियों का वही रवैया है जो किसी के साथ सिर्फ़ एक रात गुज़ारने के बाद के अनुभव के साथ होता है । कुछ पकड़ में आता है, कुछ नहीं । जो पकड़ में आता है उसमें ख़ासा व्यर्थ, तर्कहीन या जिसकी व्याख्या न की जा सके ।

"क्योंकि पेरिस एक शहर है — जहाँ हम चुपचाप सेन के किनारे चलते हुए अनायास बीती हुई ज़िन्दगी के बारे में सोचने लगते हैं, जैसे इस शहर का हर दिन बीते हुए साल का आख़िरी दिन हो - मोम - सा सफ़ेद, चेस्टनट की छाँह में उजले पानी-सा ख़ामोश ... ।"

——— xx ———

8. वियना

"हमारे भीतर कितनी अस्पष्ट लालसाएँ, कितने धुँधले स्वप्न, किसी अनुकूल क्षण की प्रतीक्षा में दबे रहते हैं । {स्वप्न - जो किसी रात अपने कमरे की चारदीवारी के भीतर एक रेकॉर्ड सुनते हुए आ समाया था, लालसाएँ—जो किसी किताब को पढ़ते हुए अपनी एक तस्वीर हमारे अतीत की अल्बम में चिपका गई थीं}, और फिर बरसों बाद अपने देश से हज़ारों मील दूर किसी अजनबी शहर में वह क्षण अचानक आ जाता है और हम स्तब्ध-से अतीत और वर्त्तमान की सीमारेखा पर ठिठके-से रह जाते हैं —"

लोग कह रहे थे कि पिछले दो-सौ वर्षों में गरमियों के इतने लम्बे और ख़ूबसूरत दिन यूरोप में नहीं आए । हर जगह शान्ति की चर्चा, युद्ध ख़त्म होने के बाद मानो शीतयुद्ध की बर्फ़ पिघल रही हो, पूरे यूरोप में मानो त्योहार-सा माहौल हो और वियना इसका एक छोटा-सा हिस्सा । इन्हीं गरमियों के कुछ दोपहर और कुछ रातों का छना हुआ अनुभव लेखक ने दुहराया है । वियना इस मायने में ध्यान

आकर्षित करता है कि बाग़, गली, नुक्कड़–हर जगह बीथोवन, ब्राह्मस, मोत्सार्ट, स्वेन्जु राफाल और माइक्लेंजलों जैसे महान कलाकारों की मूर्त्तियां देखी जा सकती हैं। मैसाकेलाण्डा में हुए समारोह में लेखक भी पहुंचा है। कई स्वप्न जो उसने किसी अनजान क्षण में देखे थे, कुछ चित्र, जो बन गए थे भीतर–अचानक मैसाकेलाण्डा की इस रात को बिल्कुल वास्तविक हो गए। कई लोग, विभिन्न देशों के, विभिन्न गन्ध लिए हुए। "जब भाषा हमारा साथ नहीं देती थी, तो हम इशारों से बात करने लगते, जब इशारों से भी अर्थ समझ में नहीं आता था, तो हम सिर्फ़ हंसने लगते थे।"

एलिस से भेंट, भेंट का और साथ बिताए मित्रवत् क्षणों का ब्यौरा देता है लेखक। अन्तिम ब्यौरे में मर्म है जो पाठक को ठहरने पर विवश करता है। जब लेखक रात को बीते दिन की ओर देखता है तो वह महसूस करता है — तमाम चीज़ें और साथ में यह भी कि एलिस की आँखें वैसी ही नीली थीं जैसे डेन्यूब का रंग।

वियना के फैले विस्तृत आकाश के नीचे चलते हुए लेखक ने सचमुच महसूस किया था कि अद्भुत गरमियों के दिन थे। और रात को "मैं सोचने लगा, बीस या तीस वर्षों बाद जब कभी कोई इन सुनहरी गरमियों की चर्चा करेगा तो मैं अपने से कह सकूंगा — "हाँ, इन गरमियों में मैं यूरोप में था।"

——— xx ———

९. चीड़ों पर चांदनी

"वह अजीब-सा यात्री कौन है, जिसकी पदचाप हमेशा पहाड़ों में सुनायी दे जाती है — चांदनी, पहाड़ी हवा या मृत्यु ?"

"किन्तु जिस 'मैजिक-माउण्टेन' की बर्फीली गुफाओं में खोकर हैंस-कैस्ट्रूप ने विराट् सत्य की उपलब्धि की थी, उसकी क्षणिक, उड़ती हुई अनुभूति कितनी बार बचपन में हुई है, क्या उसका लेखा-जोखा करना आज संभव है ?"

शिमला - जहाँ यात्री ने अपना बचपन बिताया और वहीं से प्रकृति तथा इसके सौन्दर्यात्मक विस्तार का पहला अनुभव किया। यह संयोग नहीं है कि पूरी किताब का शीर्षक वही है जो इस रचना का है। शायद लेखक की यायावरी वृत्ति और जिज्ञासा का उन्मेष ही यहीं से होता है। और जिस 'क्षणिक, उड़ती हुई अनुभूति' की चर्चा वह करता है क्या उसी सत्य को समग्रता में पाने के लिए वह भटकता रहा ? "इन पहाड़ों के पीछे न जाने क्या होगा ?" यह प्रश्न बचपन में लेखक ने कई बार दुहराया था और कितने ही वर्षों बाद "पहाड़ों की अलंघ्य, अभेद्य ऊँचाइयों की तरह इस प्रश्न की रहस्यमयता आज भी वैसी ही बनी है, जैसी कभी बरसों पहले बचपन में थी।"

लेखक कई स्मृतिखण्डों को उघाड़ता है जो बचपन में उसने बनाए थे। बचपन में कई बार प्रकृति के अजीब और अद्भुत चित्र आंखों में बसाए वे लिहाफ़ में घुस जाते थे। कभी लगता है कि आज जिस प्रकृति को देख रहे हैं वह तो एकदम नई है, वह कल नहीं थी। स्कूल जाने वाली 'शार्टकट पगडन्डी' और इसके आसपास के परिचित दृश्य, सब बदल गए हैं। बरफ़ गिरती रहती और सुबह उठने पर मन को विश्वास दिलाना पड़ता कि यही, अपना शिमला है। फिर धूप निकल आती और पहाड़ियां

धूप सेंकने के लिए अपना चेहरा निकाल लेतीं ।

बर्फ़ और बादलों का खेल कई जगह देखा लेकिन गुलमर्ग की उस चांदनी रात में जो भूले-से अचानक देखा था, वो लेखक को अब भी नहीं भूला है । "पहाड़ों पर चांदनी का यह अद्भुत मायाजाल मैंने पहली बार देखा था और एक अलौकिक विस्मय में मेरी आंखें अनायास मुंद गयी थीं । उस रात मुझे लगा था कि पहाड़ों में भी सांप की आंख-जैसा एक अविस्मृत, जादुई सम्मोहन होता है ... एक भुतैला – सा सौन्दर्य, जो एक साथ हमें आतंकित और आकर्षित करता है, जिसके मोह-पाश में बंधना उतना ही यातनामय है, जितना उससे मुक्त होना ।"

जाखू की पहाड़ी से सटा साढ़े सात सौ फ़ीट की ऊँचाई पर लेखक का स्कूल था और हर शाम पहाड़ी छायाओं के साथ बस्ता झुलाते हुए नीचे उतरना एक नए अनुभव से दो-चार होना था । दिन का उजाला, धीमे-धीमे अंधेरे में सिमट आता था । लेखक कहता है कि पहाड़ी धूप कभी मरती नहीं, सिर्फ़ अपना रंग बदल लेती है । कालका और शिमला के बीच एक उपेक्षित जगह-सोलन, जहाँ शाम की उनींदी उदासी में केवल पहाड़ी चरवाहों का गीत-स्वर हवा में तिरता हुआ सुनाई पड़ता है और सोये हुए पत्थर हैं जिनपर अनेक नाम लिखे हैं ।

नारकण्डे की एक याद — उस रात, अंधेरा — चांद-धुंध, सब मिलकर एक आकर्षक प्राकृतिक दृश्य बनाते रहे और लेखक उसे पढ़ता रहा ।

भीमताल – सुबह, दोपहर, शाम के बदलने के साथ-साथ झील का वस्त्र भी बदलता है । झील के कई चेहरे हैं । या यह भी हो सकता है कि चेहरा एक ही है – भंगिमाएँ अनेक हैं । लेखक ने गहरी लगन और जिज्ञासा से भीतर तक जाकर महसूस किया है उस पूरे प्राकृतिक विस्तार को, यहाँ तक कि उसे सुना भी है —"रात की घनी नीरवता में सब कुछ धीमे-—धीमे सिमट जाता है । लहरें शान्त हो जाती हैं । आखिरी

बस बाज़ार के आगे कोने में ठहर जाती है । दूर टापू में गूलरों के गिरने का स्वर सोते-सोते भी सुनाई दे जाता है - टप, टप, टप..."

—————— x x ——————

दे ह री से बा ह र

10. लैक्सनेस : एक इण्टरव्यू

"शायद वह हमारे युग के सबसे नॉर्मल साहित्यकार हैं ।"

"आधुनिक भारतीय लेखक मुझे 'आधुनिक' नहीं जान पड़े । जो कुछ भी पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं -- और वे अधिक नहीं हैं -- उनकी शैली बहुत कुछ मुझे यूरोप के पुराने लेखकों का स्मरण दिला जाती हैं ..."

साहित्य के नोबेल-पुरस्कार से सम्मानित, स्कूली बच्चों से टैक्सी-ड्राइवरों तक के बीच 'विलियन' के आत्मीय सम्बोधन से पुकारे जाने वाले हालदौर विलियन लेक्सनेस से आइसलैण्ड की राजधानी रिक्याविक में जब लेखक मिला तो उनका पहला साहित्य-सम्बन्धी प्रश्न 'सागा ग्रन्थों' के बारे में था । उन्होंने कहा "आइसलैण्ड का शायद ही कोई लेखक अपने को इन महान् साहित्यिक निधियों के प्रभाव से मुक्त रख सका है । अपने उपन्यास 'हैपीवारियर्स' को लिखते समय मुझे लगभग पांच वर्षों तक सागा-ग्रन्थों का अनुसंधान-अध्ययन करना पड़ा था ।" लगभग सभी

महान साहित्यकार इसी प्रकार अपनी परम्परा और विरासत में मिली साहित्य-सम्पदा से जुड़े रहने की बात करते रहे हैं । राजनीतिक प्रभुत्व और सांस्कृतिक प्रभाव जैसे प्रत्ययों से हर देश का इतिहास परिचित है । लेखक के एक प्रश्न के उत्तर में लैक्सनेस ने कहा -- "आइसलैण्ड पर सैकड़ों वर्षों के राजनीतिक प्रभुत्व के बावजूद डेनिश साहित्य या संस्कृति का हमारे देश पर कोई गहरा या स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा । बल्कि यह कहना सत्य के काफ़ी निकट होगा कि साहित्य और कला के क्षेत्र में डेनमार्क को आइसलैण्ड से निरन्तर प्रेरणा मिलती रही है ।"

सार्त्र के कथन को प्रश्न बनाकर लेखक द्वारा पूछने पर कि क्या कोई प्रतिगामी लेखक महान् साहित्य की रचना नहीं कर सकता है, लैक्सनेस ने जवाब दिया—"... इसके बावजूद मैं सोचता हूँ कि अपने प्रतिगामी विचारों के रहते हुए भी इलियट और काम्यू ने महान् रचनाओं की सृष्टि की है । और टैगोर की धार्मिक कविताएँ — क्या वे आपको आकर्षित नहीं करतीं ?" इसके साथ ही उनका यह कथन व्याख्या की माँग करता है कि टैगोर पश्चिम के लिए 'एलियन' ही बने रहेंगे ।

इस युग में रचनाकार की भूमिका ? "मुझे सन्देह है कि वह वस्तुस्थिति में कोई बुनियादी परिवर्त्तन कर सकता है । दूसरे युद्ध के आरंभ होने से पूर्व जर्मनी में अनेक ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने फासिज़्म का तीव्र विरोध किया था, किन्तु क्या उन्हें राजनीतिज्ञों की चालों के आगे कुछ भी सफलता मिल सकी ?" लेखक को संतोष नहीं होता, हमें भी नहीं होता, लेकिन लेखक याद करता है कि सफल इन्टरव्यू का लक्षण यही है कि उसे बहस की दलदल में न फंसने दिया जाय ।

भारत की यात्रा के दौरान उनके अनुभव पूछने पर कुछ सुखद हाथ नहीं लगा । ज्योतिष के प्रश्न पर उन्होंने भारत में एक अत्यन्त विश्वासी और दूसरों को विश्वास में लेने के इच्छुक सज्जन को तर्कहीन करने के लिए कहा -- "मेरे गुरु मार्टिन लूथर अनेक प्रकार के हास्यास्पद अन्धविश्वासों

का शिकार थे – एकमात्र ज्योतिष को छोड़कर । फिर भला मैं ऐसी विद्या में कैसे विश्वास कर लूं, जिसे यूरोप के सबसे कट्टर अन्धविश्वासी 'महात्मा' ने अस्वीकृत कर दिया ?"

लेखक ने अनुभव किया कि प्रश्न के तात्कालिक दबाव के तहत दिया जाने वाला उत्तर कितना खोलता है और कितना छुपाता है, कहना मुश्किल है । लेखक ने शायद लैक्सनेस के बारे में सही अनुभव किया कि वे उन बहुत कम लेखकों में हैं –– और ऐसे लेखकों की संख्या आज के युग में दिन पर दिन कम होती जा रही है — जो अपनी आस्था कमीज़ की आस्तीन पर लटका कर नहीं चलते ।

——— x x ———

11. काफ़्का और चापेक : समकालीन चेक साहित्य

"पश्चिम – लेकिन पूर्व के स्थान पर नहीं । पूर्व – किन्तु पश्चिम के स्थान पर नहीं । पूर्व और पश्चिम, दोनों ही, इसलिए नहीं कि हम अपने को किसी एक के साथ नत्थी करना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि हम मानवीयता में विश्वास रखते हैं । कोई भी चीज़ जो मानवीय है, हम अपने से बाहर नहीं रखना चाहते ।"

काफ़्का और चापेक के साथ समकालीन चेक साहित्य पर लेखक की अपनी समझ उसकी चेक संस्कृति और साहित्य से गहरी संपृक्तता

का द्योतक है । चौदहवीं शताब्दी से लेकर, इस वर्त्तमान सदी तक, जब जूलियस फूचिक ने फांसी के तख्ते से फासिज़्म के पाशविक दर्शन को अस्वीकृत करने का टेस्टामेन्ट प्रस्तुत किया, चेक साहित्य ने कई उतार-चढ़ाव देखे और एक लम्बी मंज़िल तय की । बोजेना न्यमसोवा की अमर रचना 'दादी माँ', मारवा की लम्बी रोमैन्टिक कविता 'मई', इरासेक के ऐतिहासिक उपन्यास और हमारे अपने समय में चापेक की कहानियां और नाटक एक विविधतापूर्ण परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं ।

चेकोस्लोवाकिया पर बाहरी शक्तियों की कुदृष्टि प्रायः बनी रही । हिटलर से पहले ही चेक लोगों को इसका अनुभव है । वह तो उस प्रक्रिया को अन्तिम रूप देना चाहता था, जो तीन सौ वर्ष पहले से आरम्भ हो चुकी थी । इसमें चेक भाषा की अदम्यता और जीवन्तता महत्त्वपूर्ण है जिसने अपना साहित्य बचाए रखा । 'चेकोस्लोवाकिया का कीट्स' कहे जाने वाले कारेल हिनेक मारवा ने चेक भाषा को नया अर्थ प्रदान किया और उसके अनछुए संगीत को स्वर दिया ।

कथा साहित्य में व्यापक परिवर्त्तन लाने का श्रेय एक निर्धन और गँवई लेखिका को जाता है । बोजेना न्यमसोवा के उपन्यास 'दादी माँ' के सौ वर्षों में दो सौ से अधिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । यान नेरूदा तक उपन्यास कला परिपक्व अवस्था में पहुंच चुकी थी । लंदन के साथ जैसे हम डिकेन्स को याद करते हैं, प्राग के साथ वैसे ही नेरूदा को ।

काफ्का को समझने के लिए प्राग और तत्कालीन चेक समाज को समझना पड़ेगा । प्राग से उनको समझने और समझाने के अनेक सूत्र मिलते हैं जो उनके साहित्य में हैं ।

युद्ध के विषय को लेकर अनेक उपन्यास लिखे गए पर शायद ही किसी तुलना 'अच्छा सिपाही श्वायक' से की जा सकती है । हाशेक की अद्भुत प्रतिभा का सही मूल्यांकन नहीं हुआ । "हाशेक ने हास्य की सबसे कठिन, फॉर्म पर अधिकार किया था — अपने युग की झूठी नक़ाब उतारकर उसके

नंगे चेहरे को सूरज की रोशनी में लाना—यह कोई 'एपिक' लेखक ही कर सकता है ।"

दो युद्धों के बीच का छोटा-सा समय आधुनिक चेक साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता है । कारेल चापेक ने आधुनिक चेक साहित्य को यूरोपीय साहित्य के समकक्ष लाने का काम किया और साथ ही चेक भाषा का आधुनिकीकरण और गद्य को ठोस व व्यापक धरातल देने का काम ।

फासिस्ट जर्मनी का दमन, रचनाकारों की हत्या, शब्द पर प्रतिबन्ध, और यातना का दौर — इस दौर के बाद भी चेक साहित्य से इसकी छाया नहीं गई । चेक - साहित्य को 'कम्युनिस्ट प्रचारवाद' कहकर भी हल्का करने के प्रयास हुए । आज युवा चेक-साहित्यकार अपनी विविधता और खोजी प्रवृत्ति के कारण ध्यान खींचते हैं ।

इस देश का साहित्य पूर्व-पश्चिम के द्वन्द्व से भी प्रभावित रहा । कारेल चापेक प्रायः इसकी तुलना सेतु से किया करते थे । "प्रश्न यह है कि किस विशेष ऐतिहासिक बिन्दु पर - एक विशिष्ट संदर्भ में — कोई जाति या उसका साहित्य अपने को एक खास 'मानवीय स्थिति से' संपृक्त करने में सफल होता है ? केवल इस दृष्टि से चेक साहित्य मुझे आकर्षित करता रहा है ।"

—— x x ——

12. देहरी के भीतर : चेखॅव के पत्र

"किसी व्यक्ति के कमरे में दबे - पांव चले आना, आँख बचाकर उसके रंग-ढंग, भाव-भंगिमा को देखना, वह सब कुछ देखना जो बाहर की दुनिया से हमेशा छिपा रहता है, शिष्टाचार के विरुद्ध भले ही हो, कौतूहलजनक और दिलचस्प अवश्य होता है, हम स्तब्ध-से मन्त्रमुग्ध होकर देहरी पर खड़े रहते हैं । ... जब हम किसी व्यक्ति के पत्र पढ़ते हैं तो कुछ-कुछ ऐसा ही लगता है ।"

पत्रों के संसार के कुछ विचित्र सत्य लेखक ने खोजे हैं और चेखव के माध्यम से उस सत्य को विश्वसनीय बनाया है । चेखव के पत्रों के बारे में लेखक का कहना है कि वे खोलते कम और छुपाते अधिक हैं और उनके पत्रों को पढ़कर आश्चर्य होता है कि इतना अलमस्त आदमी किस तरह अपनी कथाओं में अवसाद और तिक्तता के रंग भरता होगा । अपनी परेशानियों के बारे में वे अपने पत्रों में प्रायः मौन रखते थे । यद्यपि सारवालिन जाने से पहले उनके पत्रों में अपने जीवन के प्रति गहरा असंतोष प्रकट होता है ।

"लेखक अक्सर 'चिन्तन' से मुक्ति पाने के लिए पत्र लिखते हैं — अपने पत्रों में वे प्रायः एक हल्का-फुल्का-सा अन्दाज़ बनाये रखना चाहते हैं ।" पत्र के बारे में लेखक का यह दृष्टिकोण विवेच्य है — "कलाकृति का निर्वैयक्तिक मौन, और डायरी का स्वकथ इन दो सीमान्तों को पाटने की खातिर ही शायद पत्रों का आविष्कार हुआ होगा ।" चेखव ने अपने पत्रों में अपनी कृतियों के प्रति भी कम लिखा है । इससे आलोचकों को भ्रम बना रहा । चेखव के पत्र, संकल्प-विकल्प, व्यंग्य और विरोधाभास से भरे हैं, कला में सिद्धान्तहीन पर व्यक्तिगत जीवन में कठोर सैद्धान्तिक । इतना तो है कि उनके पत्रों को पढ़ते हुए ऐसा नहीं लगता कि हम किसी

बड़े आदमी का पत्र पढ़ रहे हैं । "चेखव की कहानियों की तरह उनके पत्रों में किसी 'शाश्वत सत्य' के दर्शन नहीं होते, वे केवल तात्कालिक क्षण को ही उजागर करते हैं । उन्हें पढ़कर हल्की-सी खीझ होती है, क्योंकि वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचते — लगता है जैसे कोई धुन अधूरी ही बीच हवा में झूलती रह गई है, 'फिनिशिंग-टच' देने के लिए जिन अन्तिम सुरों की हम प्रतीक्षा करते हैं, वे कभी नहीं आते ।"

——— x x ———

13. यूरोप में भारतीय

किसी देश को देखने के लिए, जानने के लिए कौन सी दृष्टि अपेक्षित है, किसी साहित्य को समझने के लिए क्या मानदण्ड, कौन से माध्यम हैं, किसी राष्ट्र या साहित्य की विशिष्टता किन-किन तत्वों से निर्मित होती है और हम भारतीय, यूरोप में कहाँ चूकते हैं — लेखक ने इन तथा और भी बिन्दुओं को अपनी बहस का विषय बनाया है । उनका कहना है — "प्रश्न अंग्रेज़ी से छुटकारा पाने का नहीं है । प्रश्न अपने उस 'कूप-मंडूक' संस्कारों से मुक्ति पाने का है, जहाँ अपना दरवाज़ा खोजने के बजाय हम 'बनी बनायी' अंग्रेज़ी भाषा की खिड़की से दुनिया को देखते हैं ।" पूर्व अर्थात् हम और पश्चिम के सम्बन्धों के बारे में चर्चा करते हुए अनेक आन्दोलनों और साहित्यिक आन्दोलनों की स्थानीयता और व्यापकता का सम्बन्ध बताया गया है । ठेठ स्थानीय, अपनी मिट्टी में रचा-बसा रचनाकार ही विश्व की व्यापकता प्राप्त कर सकता है । यही हाल संस्कृतियों का है । अपने यहाँ की संस्कृति और विशेषकर आधुनिक भारत की सांस्कृतिक विसंगतियों को देखते हुए यूरोप की संस्कृति की बहस से हम एक तुलनात्मक समझ हासिल कर पाते हैं । लेखक ने महसूस किया है — "हम बीसवीं सदी में उसी तरह रहते हैं, जैसे कुछ आधुनिक शहरों की सीमाओं पर आदिम जातियां ।"

——— x x ———

14. अंग्रेज़ों की खोज में

हमारा सबसे लम्बा सम्बन्ध जिन अंग्रेज़ों के साथ रहा है क्या उनकी सही छवि, उनका सही चरित्र या समग्रता में उनकी प्रकृति से हम परिचित हैं ? शायद नहीं । साथ ही, जिन अंग्रेज़ों को हमने जाना, जो इमेज बनाई, यह इमेज ही समग्रता से उन्हें जानने में बाधा उत्पन्न करती है ।

दो जातियों का दो सौ वर्ष पुराना लम्बा औपचारिक, दफ्तरी सम्बन्ध आश्चर्य उत्पन्न करता है । हमारे एंग्लो-इन्डियन साहित्य में अंग्रेज़ों का स्वाभाविक चित्रण नहीं मिलता । लेखक लंदन जाकर अंग्रेज़ों के सम्बन्ध में तमाम अपरिचित अनुभवों से दो-चार होता है और अपनी प्रकृति के अनुसार उनकी कला, साहित्य आदि को भी देखते चलता है । लंदन का चित्रण करते हुए लेखक को लगता है -- "मेरे लिए लंदन 'विदेश' उतना नहीं, जितना अपने अतीत की पुर्नयात्रा है -- पहली बार आने पर ही लगता है कि यह दूसरी बार का आना है ।" अन्त में लेखक गहरी रागात्मकता से लंदन को चित्रित करता है ।

—————— x x ——————

15. प्राग का आधुनिक रंगमंच

लेखक के निवास - काल का प्राग जैसे दो संस्कृतियों का संगम था वैसे ही रंगमंच के क्षेत्र में 'दीवार के दोनों ओर' के पूर्वग्रहों से हद तक बचा हुआ एक कलात्मक अनुभूतियों का शहर । देशी और विदेशी दोनों प्रकार के नाटकों की बहुलता और उत्कृष्टता की दृष्टि से प्राग समृद्ध हुआ जा रहा है । आबादी के हिसाब से देखें तो प्राग में जितने छोटे-बड़े थियेटर हैं, उतने यूरोप के किसी और शहर में नहीं । रंगमंच यहाँ संस्कृति और दैनिक रहन-सहन का सहज हिस्सा है । इस छोटे-से निबन्ध के द्वारा चेक रंगमंच का सारांश जाना जा सकता है । निबन्ध की सीमा के कारण शिल्प और निर्देशन के स्तर पर हुए नए प्रयोगों का ब्यौरा लेखक नहीं दे पा रहा है । यहाँ लोग परम्परा की चिन्ता नहीं करते क्योंकि यह जीवित है और उसे 'बचाने' के लिए वे ख़ास परेशान नहीं नज़र आते । पिछले वर्षों में अलगाव से उत्पन्न कठिनाइयों को भी पाट लिया गया है ।

------- x x -------

16. प्राग -- एक स्वप्न

"चलते हुए लगता है, मानो यूरोप का अंधेरा धीरे-धीरे सिमटता हुआ यहीं इस स्क्वॉयर के बीच जमा हो गया है — बीच में — जहाँ यूरोप का हृदय है, एक अवसन्न, स्तब्ध नगर, प्राग ।"

लेखक ने इस पूरी रचना को एक मार्मिक खण्ड के रूप में संप्रेषित करने में पूर्ण सफलता पायी है । बात शुरू होती है, एक बूढ़ी महिला से — सोवियत रूस और उसकी विचारधारा के प्रति आस्था की डगमगाती स्थिति से । तमाम प्रबल संभावनाओं के बावजूद उन्हें यह विश्वास था, "वे फासिस्ट नहीं हैं ... एक छोटे देश पर वे हिटलर की तरह हमला नहीं बोल सकते ।" लेकिन यह विश्वास बिखर गया । अन्त हो गया एक प्रयोग का जो साम्यवाद को नया जीवन देने के लिए किया गया था । लेखक कहता है --"हिटलर के 'तर्क' एक दिन सोवियत संघ के कवच बनेंगे, आज प्राग इसका साक्षी है ।"

इस देश में चमकी जिस आशा की किरण का स्वागत सार्त्र से लेकर अर्नस्ट फिशर तक, इतालवी कम्युनिस्ट पार्टी से लेकर फ्रान्स और पश्चिमी जर्मनी के वामपंथी नेताओं तक ने किया था वो रश्मियां उस विराट सोवियत संघ को आतंकित कर देगी, जिसे दुनिया पीड़ित मानवता का मरहम मानती आई, इससे ज़्यादा इतिहास की विडम्बना और क्या होगी ? फिर लेखक ने प्राग की जनता का चरित्र सामने रखने के लिए एक घटना का ब्यौरा दिया है जब जनता ने दुब्चेक के नेतृत्व में अपनी शक्ति का मौन प्रदर्शन किया । लेखक ने समाजवाद, प्रजातंत्र और इससे जुड़े तमाम विषयों पर सोचा और व्यक्त किया है, ज़ाहिर है,यह एक अलग चर्चा का विषय है ।

जो सोवियत संघ पहले प्रतिगामी शक्तियों के लिए एक आतंक था वह आज स्वयं प्रतिगामी शक्तियों के लिए शरणस्थली बना है । सोवियत सैनिक चेकोस्लोवाकिया में समाजवाद की रक्षा करने आए हैं, यह हर जगह प्रचारित किया गया । पर यह कैसी विडम्बना है कि जिस समाजवाद की रक्षा करने के नाम पर वे अपने टैंकों के साथ उतरे हैं, आज उसके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि - चेकोस्लोवाकिया के उत्कृष्ट कवि, लेखक और पत्रकार - उनके विरुद्ध खड़े हैं । उन लोकप्रिय नेताओं को नज़रबन्द कर दिया गया जो अपनी जनता की आशा के प्रतिनिधि हैं । लेखक ने स्पेन को याद किया है । लगता है कि नारे वही हैं, सिर्फ़ मेड्रिड का स्थान प्राग ने लिया है और टैंकों के मालिक बदल गए हैं । "मैं यह बात उन बूढ़ी महिला से भी कहना चाहता हूँ, जो स्पेन में फ्रैंको के ख़िलाफ़ लड़ी थीं । उन्होंने शायद यह कल्पना भी न की होगी कि हमारी बात-चीत के सिर्फ़ बीस दिन बाद पुराने स्क्वायर की उस बेंच पर 'मुक्ति फौज' के सिपाही अपनी बन्दूकों से लैस होकर बैठे होंगे । किन्तु यह बात मैं कहूँगा नहीं — आदमी की ज़िन्दगी बहुत छोटी है और वह चाहे कितना ही मज़बूत क्यों न हो, अपनी एक ज़िन्दगी में दो स्पेन नहीं जी सकता ।"

चेक लोगों के साथ लेखक ने भी एक स्वप्न जिया था । वह स्वप्न सोवियत टैंकों के नीचे लिथड़ा पड़ा है । इस पीड़ा और त्रासदी को, भागीदार बनकर लेखक ने भी भोगा । स्वप्न जीने के लिए जो आगे आया, स्वप्न के हत होने की पीड़ा को भी जीने के लिए आगे आना चाहिए ।

-------- x x --------

17. अंधेरे के ख़िलाफ़

"अगर एक औसत चेक से कोई पूछे कि उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा क्या है, तो वह 'समाजवाद', 'स्वतंत्रता' या 'समता' की बात नहीं करेगा। 'हमें दूसरे लोग शांति से रहने दें', यह उसका उत्तर होगा, क्योंकि शांति ही एक ऐसी चीज़ है, जो मध्य-यूरोप के इस छोटे देश को हमेशा से भरमाती रही है।"

सोवियत आक्रमण के बाद लेखक का प्राग जाना, जैसे अपने घर को लौटना है। वहाँ फिर अफ़वाहों और तनाव का माहौल – सोवियत सेनाएँ फिर कभी भी आक्रमण कर सकती हैं। यह देश ऐसे संकट के समय में क्या करता है? "विदेशी की आंखों में जो कायरता है, चेक लोगों की आंखों में वह राजनीतिक दक्षता का नाम है ... विदेशी लोग संघर्ष की बात करते हैं, चेक अपने अस्तित्व की। यह 'अस्तित्व' उनकी सदियों पुरानी संस्कृति, भाषा और साहित्य से जुड़ा है।" अन्य जगहों से लोग दमन के विरुद्ध चेक लोगों का संघर्ष देखने आते हैं, लेकिन उन्हें निराशा होती है। लोग उत्साह और सरस भाव से अपनी दिनचर्या में लगे हैं।

एक पुरानी मित्र से मुलाक़ात का एक मार्मिक चित्रण, जब वह अपने पति के साथ देश छोड़ कहीं और जाने के बारे में बात करती है। जो आशाएँ थीं वे अब धुल रही हैं, दमन गहरा रहा है -- "उसका स्वर धीरे से कांप कर ठहर जाता है। सबकी अपनी स्मृतियां, किन्तु एक स्मृति सबकी एक ही जैसी है। उनकी आंखों में अब भी एक चमकीला-सा स्वप्न तिर आता है, जब वे अपने 'प्राग-वसन्त' के दिनों की याद करते हैं — खुली ख़बरें, लम्बी रात की मीटिंगें, दुब्चेक की मुस्कराहट, और सबसे बड़ी बात — आत्मसम्मान का बोध, जो स्वतंत्रता, सिर्फ़ स्वतंत्रता

से उत्पन्न होता है ।" कुछ दिनों पहले वे एक और सलाह लेने आए थे -- वे कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल होना चाहते थे । बल्तावा में बहुत-सा पानी बह चुका है । जो लोग पिछले ही वर्ष कम्युनिस्ट पार्टी में स्वयं शामिल होना चाहते थे वे अब देश छोड़ना चाहते हैं ।

"उन्होंने सबसे पहले लेखक-संघ के दफ़्तर पर कब्ज़ा किया था" -- उस महिला ने बताया । और जब उसने उन सैनिकों से कहा क्या वे लेनिन को जानते हैं और बताया कि जिन किताबों पर उन्होंने संगीनें तान रखी हैं वे लेनिन की हैं तो वे कुछ समझ नहीं पाए, हंसने लगे । डा. दर्बोलोवा से अपनी मुलाकात और उनकी माँ के जिस 'सुखद भ्रम' का समर्थ चित्रण लेखक ने किया है वह एक साथ वैचारिक और संवेदनात्मक दोनों स्तरों पर झकझोरता है ।

यान और एवा के साथ एक रात का ब्यौरा, और इस तरह देश के आन्तरिक तनाव और संकट के क्षणों को जीने का निजी ढंग उभर आता है । एवा रूसी भाषा पढ़ाती है पर अब कक्षा में आधी उपस्थिति भी नहीं होती । वह समझाती है कि पुश्किन और चेखव की भाषा वह नहीं है जो प्राग में घूमते रूसी सिपाही बोलते हैं लेकिन वो नहीं समझते और खुद वह भी नहीं समझती ।

साम्यवादी सेनाएँ अपनी इच्छाएँ अपनी शर्तें बता रही हैं और चाहती हैं कि यह देश स्वयं अपने लिए वो व्यवस्था कर ले जो साम्यवादी टैंक चाहते हैं । लेखक दीवार पर वही पुरानी फोटो देखता है -- "एवा और यान खुली ट्रक पर बैठे हैं, हाथों में लाल झण्डे हैं, डेट 1956 । उस साल दोनों एक साथ कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बने थे ।"

-------- x x --------

18. राब्स ग्रिये के साथ : एक शाम

"हर महत्वपूर्ण लेखक जिस विधा में काम करता है -- चाहे वह उपन्यास हो, या कविता या ड्रामा - उसके रूप या फॉर्म को बदलता है । महत्वपूर्ण परिवर्तन हमेशा रूप में होता है, कन्टेन्ट या विषयवस्तु में नहीं ।"

रॉब्ब ग्रिये को एक समाजवादी देश की राजधानी में देखना और बहस करते हुए देखना, एक आश्चर्य ही था । इस आश्चर्य से गुज़रा लेखक, प्राग में । 'नव उपन्यास' आन्दोलन और राब्ब ग्रिये के नाम पर एक अच्छी भीड़ थी उस छोटे-से हॉल में । कुछ छोटे-मोट ब्यौरों के बाद लेखक ने उनके व्याख्यान के कुछ महत्वपूर्ण अंशों को उद्धृत किया है । इनसे उनके आग्रहों का अन्दाज़ा मिल जाता है ।

------- x x -------

19. परम्परा और प्रतिबद्धता - एक बातचीत

किसी देश का 'सांस्कृतिक वातावरण' निर्मित करने वाले तत्व कौन हैं, वे आरोपित होते हैं या नैसर्गिक, यूरोप के देशों में क्या सामान्य रूप से ये तत्व काम करते हैं -- लेखक ने इन प्रश्नों पर बात की है । लम्बे समय तक यूरोप में रहने के कारण स्वभावतः ऐसे प्रश्नों पर एक रचनाकार को सोचना और कहना चाहिए । सृजनात्मक संस्कृति और बाज़ारू संस्कृति

के बीच किस तरह का सम्बन्ध कोई देश बनाता है, तनाव का या शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का ? इन प्रश्नों का प्रतिबिम्ब साहित्य में अधिक झलकता है । फिर इस बात पर बहस होती है कि एक पूंजीवादी देश और समाजवादी देश में इस सम्बन्ध का स्वरूप और आधार क्या हैं । लेखक अपने अनुभव से कहता है कि जो सांस्कृतिक संकट आज पूरे विश्व में है उसके प्रति हम भारतीयों का 'आत्मसंतोष' थोथा और हास्यास्पद है ।

लेखक अपने प्राग-आवास के दौरान वहाँ की साहित्यिक गतिविधियों और साहित्यकारों से अनौपचारिक स्तर पर जुड़ा रहा । लेखक को लगा कि 'लौह आवरण' के पीछे जिन लेखकों को माना जाता रहा है वे 'मुक्त' रूप से सोच-विचार सकते हैं । "मेरे लिए यह प्रीतिकर अनुभव था क्योंकि जिज्ञासा, अकुंठित रुचि, और विनयशीलता जैसी कमजोरियां हमारे देश के साहित्यकारों में कम ही दिखाई देती है ।" लेखक ने बहस में शामिल रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय दिया है जो तथ्यात्मक नहीं है, उनके साहित्य पर थोड़ी बात की है और फिर प्रश्न तथा उत्तर का क्रम । "बातचीत की छिटपुटी कतरनों को संयोजित रूप देने के लिए मैंने कुछ ऐसे सामान्य प्रश्नों को चुना था जो साहित्य से इतना सम्बन्ध नहीं रखते, जितना इस दुनिया से, जिसमें हम जी रहे हैं ।" तमाम प्रश्न जो पूंजीवादी व्यवस्था के सांचे में जी रहे रचनाकारों के आस पास मंडराते हैं, समाजवादी देश भी शिद्दत से उसकी आंच महसूस करते हैं । "यों भी अपने में यह जिज्ञासा मुझे बहुत स्वाभाविक जान पड़ती है कि एक समाजवादी देश के लेखक (जो चाहे स्वयं समाजवादी न हों) उन समस्याओं के बारे में क्या सोचते हैं जो बीसवीं सदी की औद्योगिक सभ्यता की देन हैं ... एक ऐसी सभ्यता जिसका गौरव और जिसकी बर्बरता अणुयुग की संभावनाओं की ही तरह असीम है और जिसका दबाव समाजवादी देशों पर उतना ही गहरा है जितना पश्चिम की 'आज़ाद दुनिया' पर ।"

------- x x -------

क ला का जो खि म

20. सुलगती टहनी

"एक ऐसा क्षण आता है जब हम अपने भीतर मरकर दुबारा जन्म ले लेते हैं । हम स्वयं अपने मिथक बन जाते हैं -- जिसमें अतीत भी है और भविष्य भी --"

निर्मल वर्मा के यात्रा सम्बन्धी साहित्य को हमने यात्रा-संस्मरण कहा है । इसके पीछे 'सुलगती टहनी' जैसी रचनाओं की प्रेरणा है । इसके बारे में लेखक का कहना है कि यह 'निबन्ध से अधिक एक यात्रा-चिन्तन है ।' अर्थात् इस रचना में 'चिन्तन' पर ज़ोर है । यात्रा के लिए चयनित स्थान और समय दोनों के कारण चिन्तन से जुड़ने के पर्याप्त बिन्दु और अवकाश लेखक प्राप्त कर सका है । यह निबन्ध लेखक की कुंभ मेले की यात्रा का आन्तरिक चित्र है जो बाहरी विवरणों को भी निजी रंग से रंग देता है । लेखक इस मेले में कुछ पाना चाहता है और इसलिए वह सब कुछ छोड़कर गया है --'तर्क बुद्धि, ज्ञान, कला, जीवन का एस्थेटिक सौन्दर्य' और ढेर सारी चीज़ें । कुंभ को लेखक ने सचमुच एक रचनाकार की दृष्टि से देखा है जो कुछ महत्वपूर्ण पा लेना चाहता हो । लेखक ने गहरी आत्मलयता, आस्तिक आश्चर्य और खुलेपन से सब कुछ देखा है --"मेरे आगे-पीछे अन्तहीन यात्रियों की कतार थी -- शताब्दियों से चलती हुई, थकी, उद्भ्रान्त, मलिन - फिर भी सतत प्रवहमान । पता नहीं वे कहाँ जा रहे हैं, किस दिशा में, किस दिशा को खोज रहे हैं, एक शती से दूसरी शती की सीढ़ियां चढ़ते हुए ? कहाँ है वह कुंभ-घटक जिसे देवताओं ने यहीं कहीं बालू के भीतर दबा कर

रखा था । न जाने कैसा स्वाद होगा उस सत्य का - अमृत की कुछ तलछटी बून्दों का, जिसकी तलाश में यह लम्बी, यातनाभरी धूल-धूसरित यात्रा शुरू हुई है -- हज़ारों वर्षों की लांग मार्च, तीर्थ अभियान, सूखे कण्ठ की अपार तृष्णा -- जिसे इतिहासकार 'भारतीय संस्कृति' कहते हैं ?"

लेखक ने इस यात्रा को आध्यात्मिक यात्रा का रूप दे दिया है । कई महत्वपूर्ण और प्रायः विवादग्रस्त प्रश्नों पर अपने ढंग से लेखक ने टिप्पणी की है । जैसा कि ऊपर कहा गया, लेखक ने तमाम पूर्वगृहीत अनुभवों को छोड़ दिया है और एक ईमानदार रचनाकार की तरह कुंभ को जीने और जानने का यत्न किया है । इसमें उसकी आत्मीयता शामिल है । यह रचनाकार लेकर गया है ।आत्मीयता लेकर कोई कहीं भी जाय, ख़ाली लौटकर नहीं आता । लेखक को यह बोध प्राप्त होता है --"कैसा अन्त ? क्या कोई ऐसी जगह है जिसे हम अन्त कहकर छुट्टी पा सकें ? जिस जगह एक नदी दूसरी में समर्पित हो जाय और दूसरी अविरल रूप से बहती रहे, वहाँ अन्त कैसा ? हिन्दू मानस में ऐसा कोई बिन्दु नहीं जिसपर अंगुली रखकर हम कह सकें, यह शुरू है, यह अन्त है ..."

भारतीय संस्कृति और मानस की बुनावट को समझने के लिए पूर्वनियोजित कोई विचारधारा हमें भटका सकती है । नयपाल जैसे लेखकों की दृष्टि पर लेखक ने आपत्ति की है । लेखक कहता है -- 'जो आदमी बाहर से देखता है वह सिर्फ़ ऊपरी सतह देख पाता है ...' अन्ततः संगम क्या है ? सिर्फ़ अन्धविश्वास, एक भूगोल, एक रूढ़ि, एक सामूहिक गति, परम्परा का शव, कथा, भटकाव ... नहीं, यह सब आरोप हैं । लेखक क्या कहता है ? -- "इस मेले में रोज़ हज़ारों तीर्थयात्री दिखाई देते हैं, किन्तु हर व्यक्ति का अपना अतीत और इतिहास है -- न जाने, वे यहाँ कौन-सी पीड़ा छोड़ने आए हैं, किस

पाप और अभिशाप से मुक्ति पाने की छटपटाहट उनके भीतर छिपी है -- यह हममें से कोई नहीं जान पाएगा ... सिर्फ संगम ही एक खिड़की है, जिसके पीछे हम सब 'कनफेस' करते हैं -- दो नदियां इस रहस्य को अपने पल्लों में हमेशा के लिए बन्द करके आगे बह जाती हैं और हम खाली और मुक्त और हलके होकर लौट आते हैं ।"

संगम के बारे में लेखक की यह दृष्टि बुद्धिवादी नहीं है । शायद यह दृष्टि और कई वादों के सांचे में न आ पाए लेकिन लेखक को वह मिल गया है जिसके लिए वह भी लाखों लोगों की भीड़ में, लाखों पहचानहीन लोगों की तरह यातना सहते हुए कुंभ की अंधेरी भटकन में शामिल हुआ था । "मुझे नहीं मालूम, लेकिन मैं इस पर विश्वास करना चाहूँगा, इस विश्वास के सहारे जीना चाहूँगा ।"

——— x x ———

-- ढलान से उतरते हुए --

21. सिंगरौली - जहाँ कोई वापसी नहीं

"जातीय स्मृति का सम्बन्ध हमेशा प्राकृतिक परिवेश, संस्कारों और उन सब चीज़ों से होता है जिन्हें हम सतह की, मर्त्य और भौगोलिक मानते हैं । अगर हम उन संरक्षण स्थलों को नष्ट करते हैं जहाँ पर हमारा अतीत या स्मृति जीवित होती है तो मुझे आने वाले वर्षों में कोई आशा नहीं दीखती कि हमारे समाज की वह विशिष्टता कायम रह सकेगी --" निर्मल वर्मा, पूर्वग्रह 97, पृ. 28

लेखक ने सिंगरौली की यात्रा के दौरान विकास की वर्चस्वशाली अवधारणा से जुड़े कई प्रश्नों का सामना किया है । "जब से सरकारी घोषणा हुई है कि अमरौली प्रोजेक्ट के अन्तर्गत नवागाँव के अनेक गाँव उजाड़ दिए जाएँगे, तब से न जाने कैसे आम के पेड़ सूखने लगे ।" यह चमत्कार हो सकता है । लेकिन यह लेखक देख सका कि आदमी और प्रकृति के बीच और भी कई तरह रिश्ते हैं । "किन्तु मनुष्य के विस्थापन के विरोध में पेड़ भी एक साथ मिलकर मूक सत्याग्रह कर सकते हैं, इसका विचित्र अनुभव सिर्फ़ सिंगरौली में हुआ ।" कई सम्मिलित कारणों से गांवों से लोगों का विस्थापन, शहरों में स्लम क्षेत्रों की बेतरतीब बढ़त, स्लमों के उजड़ने, उजाड़े जाने और फिर इसके लिए राजनीतिक दाँव-पेंच - सब एक ही चक्र के भीतर आते हैं । लेखक ने इन्हें 'आधुनिक भारत के नए 'शरणार्थी' कहा है । जो 'औद्योगीकरण के झंझावात' से अपनी ज़मीन से उखड़ गए हैं । लेखक सिंगरौली के वर्त्तमान को देखते हुए इसके अतीत, सुखद अतीत की थाह लेता है । विकास की तमाम मॉडलों की चर्चा आती है । औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण की आंधी में कमज़ोर

क्षेत्रों की बलि, विस्थापन और कभी-कभी, कई बार विस्थापन, क्षतिपूर्त्ति की क्रूर प्रक्रियाएँ, राजनीति के वादे, खोखले वादे – सिंगरौली एक उदाहरण प्रस्तुत करता है । इस क्षेत्र के संतुलित और शान्त पर्यावरण को विषाक्त होते देखा जा सकता है । अन्त में लेखक का आक्रोश थमता है । वह कुछ घटनाओं का ज़िक्र करता है जिससे शोक का वातावरण निर्मित होने लगता है । मज़दूरों और मज़दूर औरतों की नियति से सम्बद्ध एक घटना और एक औरत की मृत्यु ने लेखक को एक बोध प्रदान किया । 'मोलोक' का अर्थ उसे अब ज्ञात हुआ — "हर व्यक्ति की नियति को ग्रसती, काली लम्बी छाया, जिससे कोई छुटकारा नहीं । इस अवसाद के साथ लेखक के मन में एक और भी चित्र है । शायद यह लेखक का निर्माण है । सपना भी हो सकता है — "अमझर की एक दोपहर, पानी से भरे धान के खेत के बीचोंबीच अपने मित्र के कन्धों पर बैठा हूँ, सिर पर चटाई का हैट पहन रखा है और मेरे साथ काली, साफ़, सुन्दर आदिवासी लड़कियां भी खड़ी हैं -- पानी में घुटनों तक डूबी हुईं । उन्होंने भी हैट पहन रखा है -- और वे मुझे देखकर खिलखिलाते हुए हंस रहीं हैं ।"

——— x x ———

22. ढलान से उतरते हुए

"... मोमबत्तियों और अगरबत्तियों के धुंधलाए आलोक में प्रार्थना के शब्द उन पर उठते हैं -- एक अन्तहीन विलाप की तरह और गिरजे की दीवारों से टकराते हुए लहरों की तरह वापस लौट आते हैं । आधी रात की घड़ी में कोई गिरजा ठिठुरते हुए लोगों से इतना भरा होगा, एक ऐसे देश में, जहाँ साठ वर्षों से ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं, एक ऐसा रहस्य है, जिसकी कुंजी मार्क्स, लेनिन, किसी के पास नहीं ।"

रचना का प्रारंभ यदि कोई घटना है, तो वह है लेखक द्वारा लेनिनग्राड में दॉस्तोएव्स्की का घर देखने जाना । इसके साथ ही लेखक कई महान रचनाकारों को अपनी स्मृति में पाता है -- जाग गए हों सभी जैसे । लेनिनग्राड एक शहर नहीं एक मायावी संसार है । नाबाकोव ने बड़े उपन्यासों को दुनिया की 'महान परीकथाएँ' माना था पर लेखक को लगता है "सिर्फ़ उपन्यास ही परीकथाएँ नहीं होते कुछ शहर भी अपनी ईंटों, गलियों, मकानों में पूरा एक मायावी संसार लिए जीते हैं --"

मास्को की एक पुरानी सिमिट्री — चेखव की कब्र, स्टालिन की पत्नी । फिर कीव की मानेस्ट्री के नीचे आस्थावान भिक्षुओं की कब्र । लेखक मृतशरीरों की सभा से होता हुआ असाधारण अनुभवों को प्राप्त करता है -- "... सिर्फ़ बरसों बाद भिक्षुओं की जमी देह और केमिकल्स से लिपटे लेनिन के मृत शरीर में कोई अन्तर नहीं था, दोनों ही अपने बक्सों में -- आस्था और अनास्था से परे -- रूस की बर्फ़ की तरह नश्वर और शाश्वत दिखाई देते थे ।"

रूस के बारे में बचपन में भूगोल की किताबों में पढ़े गए अनुभव,

फिर पुश्किन के साहित्य से मिले चित्र, और फिर स्वयं रूस को जाकर वहीं जीना - सीज़र पावेस के शब्दों में कहें तो हर चीज़ को दूसरी बार देखना, रूस की सर्दियों को दूसरी बार देखना — अब लेखक महसूस करता है —"रूस ही शायद ऐसा देश है जहाँ हमारी अपनी ज़िन्दगी, पुराने पढ़े उपन्यास, और इतिहास की मौजूदा घड़ी, आपस में ऐसा उलझ जाते हैं, जिन्हें एक दूसरे से अलग करना असंभव है ।"

यात्री-लेखक को रूस की राजनीतिक लपटों की आँच महसूस करते देखा जा सकता है । अफ़गानिस्तान की समस्या का रूस में असर, रूस के बन्द समाज में वह सबकुछ, जो एक दशक पहले बाहर आया-लेखक के अनुभव से गुज़रता है । प्रचार और यथार्थ के बीच गहरी खाई, पूंजीवाद और समाजवाद के नाम पर आम जनता के कंधों पर रखकर बन्दूकें चलाते कुछ लोगों की तनातनी, उसी रूस के समाज में काले और गोरे भेद, जिससे स्वयं लेखक को दो-चार होना पड़ा, युद्ध — आरोपित युद्ध और इसके विध्वन्स को लेखक नोट करता है ।

मार्क्सवाद और रूस के अन्तर्विरोधों को लेखक बारीकी के साथ देखता है । "समाजवादी देश में हर जगह रूबल का यथार्थ डालर की माया के आगे नतमस्तक दिखाई देता था ... कुछ ऐसा लगता था कि 'समाजवादी यथार्थवाद' का सिक्का सिर्फ़ साहित्य में ही चलता है, बाहर की दुनिया में उसका कोई मूल्य नहीं ।" पर किताबें खूब बिकती थीं वहाँ, प्रकाशन जगत का अपना प्रपंच था जो राजनीति का शिकार था । लेखक, रुदिन नामक रचनाकार से अपनी भेंट का ब्यौरा देता है । उसके शब्द उसे याद रह जाते हैं — "एक लेखक की ज़िन्दगी, उन्होंने कहा, वह और लोगों की तरह है । फर्क़ सिर्फ़ इतना है, लोग कुछ और सुनते हैं, वह कुछ और सुनता है ।"

——— x x ———

23. 'दो दुनियाओं के बीच'

"शहरों में रहने वाले आदिवासियों को विवशतावश दो दुनियाओं में रहना पड़ता है, आदिम और आधुनिक दुनिया के बीच । अधिकांश आदिवासी इन दो दुनियाओं के द्वन्द्व को कुछ इस तरह सुलझा लेते हैं कि वे किसी भी दुनिया में पूरी तरह नहीं जीते ।"

लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि डायरी के ये नोट्स उसके व्यक्तिगत अनुभवों का एक कच्चा-चिट्ठा है -- कोई प्रमाणिक दस्तावेज नहीं । लगभग बीस साल पहले मणिपुर की कला अकादमी के निमंत्रण पर इम्फाल जाने के अवसर पर नागालैण्ड भी घूम लिया गया । आज तो कई परिवर्तन हो गए हैं । "मुझे नहीं मालूम, वे लोग कहाँ हैं, जिनके 'आतिथ्य' ने मेरे आवास को इतना सुन्दर और प्रीतिकर बनाया था । वे जहाँ भी हों, जैसे भी हों, मेरी स्मृति में सुरक्षित हैं ।" इस निबन्ध में कोहिमा, मणिपुर और नागालैण्ड की, स्थान विशेष की, कुछ संक्षिप्त यात्राओं का हिसाब है । मणिपुर ने लेखक को आकर्षित किया है । कुछ पहचाना-सा लगा था पहाड़ी नागालैण्ड - शायद पहाड़ों के ही कारण । मणिपुर में उन्मुक्तता है, जीवन में पैबन्द नहीं हैं, कठिन हो पर यातनाप्रद नहीं । "हर मणिपुरी लड़की को देखते ही प्रेम उमगने लगता था । वे लापरवाही से साइकलों पर तितलियों-सी उड़ती रहती थीं । अपनी रंग-बिरंगी लुंगियों के रंग-बिखेरते हुए । लगता था, हम भारत के बाहर किसी विदेशी शहर में हैं ।" मणिपुर में कुछ लोगों के साथ मदिरा का साथ रहा, अल्प, पर याद है । कुछ संकेत दिया लेखक ने कि सामाजिक, कुछ प्रचलित विधि, निषेध वहाँ भी थे जैसे ठेठ उत्तर भारत के, कस्बों में ।

कुछ वर्णन कोहिमा का भी, फिर नागालैण्ड में मुकोक चुंग और तुनसियांग तथा उंगमा । लेखक का कहना है कि हिन्दुस्तान का

शायद ही कोई हिस्सा ऐसा है जिनके निवासियों ने नागालैण्ड में अपना घर न बसाया हो । भाषा भी मिश्रित हो गई है । स्थानीय लोगों से विवाह के रिश्ते बंध चले हैं । उंगमा गांव की सफ़ाई और सुथरापन तो दिल्ली में दुर्लभ है । और गांवों की कार्यप्रणाली तथा जीवन-शैली को देखकर बरबस लेखक को याद आया "गांधी का ग्राम-स्वप्न शायद यही रहा होगा ।" नागालैण्ड में, यौनपरक नज़रिया भिन्न है । एक खुलापन है, जिसे अनेक नाम, चाहें तो दिए जा सकते हैं । जैसा कि वहाँ के एक अध्यापक ने, जो असम से आया था, कहा "कोई भी किसी के साथ जा सकता है ।" वह खिन्न था इससे, हालांकि मज़े में था । लेखक का यह पर्यवेक्षण है कि नागालैण्ड में मिशनरी लोगों की भूमिका निस्वार्थ सेवा की नहीं रही । "सी वॉन-फ्यूररहाइन-डॉर्फ ने उनके बारे में अपनी पुस्तक में लिखा है -- 'ईसाई मिशनरी अक्सर नागा-कबीलों को अनेक तरह का प्रलोभन देते हैं, आधुनिक सभ्यता की सुख-सुविधाएँ, स्कूल, उच्चशिक्षा, नौकरियां इत्यादि ताकि उनसे आकर्षित होकर वे अपना धर्म त्यागकर ईसाईयत को स्वीकार कर लें' । मिशनरी लोगों की 'ईसाईयत' सिमोन वेल की अवधारणा से कितनी भिन्न थी ।"

-------- x x --------

— अध्याय-4 —

निर्मल वर्मा : 'अंदाज़े बयां'
﴾ भाषा - शिल्प : विशिष्टता ﴿

ब्रेख्त की चर्चा के दौरान निर्मल वर्मा ने आलोचना की अधूरी दृष्टि पर टिपपणी की है । इसके साथ ही हमें अवसर मिलता है कि उनकी आलोचना सम्बन्धी धारणा की एक संक्षिप्त चर्चा करें । वे लिखते हैं -- "पश्चिम के साहित्यकार ब्रेख्त के महान कृतित्व को स्वीकार करते हैं -- उनके कम्युनिस्ट व्यक्तित्व को नहीं । पूर्वी देशों के आलोचक उनके कम्युनिस्ट व्यक्तित्व की सराहना करते हैं, किन्तु उनके कृतित्व के सम्बन्ध में, शायद, पूरी तरह से आश्वस्त नहीं ।"[1]

प्रायः आज आलोचना कलाकृति की विविधता और बहुलता से कतराती है । एक ख़ास अर्थ अभीष्ट है उसे, और इस अर्थ से ही कलाकृति को परखा जाता है । होना तो यह चाहिए था कि आलोचक कलाकृति के समक्ष अपने जिन उपकरणों और कसौटियों को अप्रासंगिक पाता है, उन्हें त्यागने में संकोच न करे लेकिन "जो ख़ाली है, वह क्या कुछ छोड़ेगा ?"[2] जबकि सच यह है कि किसी एक उत्कृष्ट कलाकृति का मूल्यांकन, बड़े फलक पर देखें तो एक पूरी संस्कृति का मूल्यांकन हो जाता है । इसलिए "व्यावहारिक आलोचना की मर्यादा यह है कि वह उस 'भाषा' का मूल्य पहचान सके, जिसमें एक कलाकृति हमारे युग की संस्कृति पर आलोचना करती है ।"[3] और वह शब्द ? यदि सत्य इस शब्द के सहारे ग्रहण किया जाता है तो यह शब्द माध्यम या उपकरण मात्र नहीं रह जाता । जहाँ रूप से अभिप्राय को अलगाया नहीं जा सके, कला में वहीं गहरी संपूर्णता आती है । "समर्थ आलोचना - जहाँ अर्थों के लोकतंत्र को स्वीकार करती है, वहाँ वह मूल्यों की वर्णव्यवस्था को भी गहरा सम्मान देती है ।"[4]

आगे के पृष्ठों में लेखक की रचनाओं पर एक आलोचना की दृष्टि डाली गई है । संक्षेप में, उस कलात्मक अनुभव में साझा करने की कोशिश

की गई है जो अब कलाकार की व्यक्तिगत सम्पत्ति न रह गया है, 'एक सार्वजनिक अनुभव बन गया है।'[5] ऐसा करने में यथाशक्य उस आदर्श को निगाह में रखा है जिसे स्वयं लेखक ने समर्थ आलोचना का आदर्श बताया है।

——— × × ———

— शब्द —

"कुछ शब्द जादुई होते हैं, अपने अर्थों में नहीं, बल्कि उनके परे, दैहिक रूप से जादुई, जिनका जादू उनकी ध्वनि में निहित होता है, ऐसे शब्द जो कोई संदेश देने से पहले भी अपना अर्थ रखते हैं, शब्द जो अपने में ही अर्थ और संकेत हैं, जिन्हें समझना नहीं, सुनना होता है, एक जानवर के शब्द, एक बच्चे की स्वप्न भाषा ... मारिना स्वेतायोवा ने यह बात पुश्किन के सन्दर्भ में कही थी, किन्तु क्या वह हर कलाकृति पर लागू नहीं होती ?"[6]

मलयज ने उचित लक्ष्य किया है कि शब्द अब भी निर्मल वर्मा के लिए जादू है। "वे बड़े प्यार-दुलार से शब्दों को उठाते हैं और पास-पास रखते हैं। उन्हें साफ़-सुथरा रखने के लिए उन्हें झाड़ते-पोंछते भी रहते हैं। शब्दों को बरतने का ढब उन्हें आता है। वे शब्दों को फुसलाना और फुसलाकर उनसे अपने मतलब की बात कहवा लेना जानते हैं।"[7] न सिर्फ़ अपने उपन्यासों और कथासाहित्य में, क्योंकि यह बात मलयज ने इन्हीं के सन्दर्भ में कही है, आलोचनात्मक निबन्धों और साक्षात्कारों तक में निर्मल, शब्दों के प्रति इसी तरह पेश आते हैं।

जहाँ तक यात्रा-संस्मरणों का प्रश्न है, वहाँ यह उनका स्वभाव और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। "शब्द जादू की कुंजी है जिससे निर्मल वर्मा अपनी स्मृति के बन्द कमरे को खोलते हैं।"[8] निर्मल वर्मा का शब्दों के प्रति रुख उनकी रचनाओं और वक्तव्यों - दोनों से स्पष्ट होता है। वे भाषा मात्र पर बात करते हुए काफ़ी व्यापक दायरे में सोचते और समझते हैं। उन्होंने लिखा है -- "जहाँ यह सच है कि एक कलाकृति का सत्य शब्दों के विशिष्ट संयोजन में ही उद्घाटित होता है, वहाँ वह भी उतना ही सच है कि वह सत्य कला की भाषा को भी अपनी विशिष्ट गुणात्मकता में उजागर करता है। दूसरे शब्दों में एक कलाकृति की भाषा, सम्प्रेषण का महज़ माध्यम मात्र नहीं है बल्कि कलाकृति में ही वह अपना आत्मीय और आत्यान्तिक चरित्र उद्घाटित करती है।"[9] इन कथनों को हम कई बार याद करते हैं जब लेखक की रचनाओं से दो-चार होते हैं। पुनः पुनः लगता है कि मलयज ने लेखक की भाषा-संवेदना को पकड़ लिया है। इधर भाषा को लेकर काफ़ी बहसें हो रही हैं और मैं सिर्फ़ याद-भर कर रहा हूँ कि मोटे तौर पर सास्यूर से आज नोम चोम्स्की तक यह बहस किसी-न-किसी रूप में चल रही है। भाषा का राजनीति और इसके सर्वग्राही रूपों के साथ सम्बन्ध तेज़ी से चर्चा का विषय बना है। लोग भाषाओं को बिगाड़ रहे हैं, शब्दों को अविश्वसनीय बना रहे हैं और इस परिवेश में रचनाकार का भाषा के प्रति व्यवहार, क्या महत्वपूर्ण नहीं होता? अशोक वाजपेयी द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के जवाब में निर्मल वर्मा ने इन सरोकारों को ध्यान में रखते हुए महत्वपूर्ण बातें कहीं हैं। वर्त्तमान संदर्भ में वह पूरा अनुच्छेद ही द्रष्टव्य है -- "एक दिन किसी दोस्त से मैं बात कर रहा था ... तुम जो शब्दों का इस्तेमाल करती हो : मसलन 'सामूहिक' शब्द है, 'प्रामाणिकता' है, तो ये शब्द लेखों में 'उपभोक्ता वस्तु' क्यों बन जाते हैं, ... आज 1978 में जो लेखक या आलोचक लिख रहा है उसे इस समूची 20वीं सदी की पिटी-पिटायी उक्तियों की लड़ाई को समझना होगा, जिसने पिछले सत्तर सालों में काफी कुछ

हताहत किया है ।"[10] निर्मल वर्मा मानते हैं कि कलाकृति में ऐसी भाषा का सृजन होता है जिसे सिर्फ़ सुनना नहीं होता, देखना और अनुभव करना होता है, समझना तो बिल्कुल प्राथमिक चीज़ है । सभ्यता और प्रकृति के रिश्ते की तरह कला और सभ्यता का रिश्ता भी तय होता है । यदि यह सभ्यता प्रकृति के प्रति आक्रामक और लोलुप है तो वैसे ही कला के प्रति । क्योंकि यह उस क्षमता को ही नष्ट कर रही है जो हमारी इन्द्रियों को सम्पन्न करती है । एक निबन्ध में निर्मल वर्मा ने आश्चर्य व्यक्त किया है कि लीविस और आर्वेल जैसे आलोचकों ने कला-भाषा के अवमूल्यन पर क्षोभ तो प्रकट किया है किन्तु इसके कारण केवल राजनीति, पत्रकारिता या शिक्षापद्धति में ही टटोल कर रह जाते हैं । "वे उस वैषम्य को नहीं देखते जो स्वयं मनुष्य की संस्कृति और कलाकृति की प्रकृति शब्द और सत्य के बीच आ खड़ा हुआ है ।"[11] (यदि इस कथन का विखण्डन किया जाय तो यह अर्थ निकलेगा कि ठोस और अधिक सार्थक सूत्रों की अपेक्षा सूक्ष्म और अधिक सैद्धान्तिक सूत्रों पर बल दिया जा रहा है)

इन यात्रा संस्मरणों के लगभग हर पृष्ठ पर शब्दों के प्रति गहरी समझ और तमीज़ का अहसास हो जाएगा ।

——— x x ———

— चित्र —

निर्मल वर्मा शब्दों के सहारे चित्र खड़े करते हैं । वे जिन बिम्बों का निर्माण करते हैं वे इतने सजीव और आकर्षक होते हैं कि उन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता । इस कौशल का उपयोग वे बहुलता के साथ करते हैं । इन यात्रा संस्मरणों को पढ़ते हुए कई बार, कई स्थलों पर

यह अनुभव होता है कि पूरा आख्यान इस कौशल के सहारे कलात्मक हो उठा है । आगे कुछ उदाहरणों के साथ हम यह देखेंगे कि चित्र चाहे बाह्य जगत का हो या अन्तर्मन का, परिवेश का हो या असम्बद्ध अनुभवों की श्रृंखला का — एक सामान्य कौशल काम कर रहा है । पूर्णिमा का चांद, एक समय लेखक को ऐसा लगता है — "अब समूची रात की यात्रा में थका हुआ वह क़िले के माथे पर चिपका था, एक गोल, सफेद, मुरझाई बिन्दी — जिसे सिर्फ़ एक अंगुली से पोछा जा सकता था ।"[12] इस तरह की छवियां वे अक्सर रचते हैं । "लंदन बहुत पुराना शहर है और टेम्स बहुत पुरानी नदी और दोनों ही अपने सनकी ढंग से एक दूसरे को चाहते हैं — मातीस के उस चित्र की तरह, जिसमें एक बहुत बूढ़ा आदमी एक बूढ़ी बिल्ली को गोद में लिए बैठा है — दोनों ही बहुत शान्त और सुखी नज़र आते हैं । एक दूसरे से बेख़बर ज़रूर हैं, लेकिन यह बेख़बरी ऐसी है, जो एक लम्बी उम्र के प्यार से उत्पन्न होती है ।"[13]

निर्मल, पाठक से यह तो आशा रखने के अधिकारी हैं कि वह अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की क्षमता का पूरा उपयोग करे । कहीं-कहीं वे एक साथ कई प्रक्रियाओं को संभव बनाते हैं — स्पर्श, दृश्य, श्रवण, और चिन्तन, सबका सम्मिलित योग ही लेखक को ग्रहण कर सकता है । 'उत्तरी रोशनियों की ओर' का उल्लिखित पृष्ठ विशेष ही उद्धरण योग्य है फिर भी एक अंश — "चट्टानों के शिखरों पर घास कुछ टुकड़े हैं — जिनपर सागर-पक्षियों का झुण्ड चक्कर काट रहा है -- उनकी छाया नंगी चट्टानों पर मँडराती है और ग़ायब हो जाती है, रात के धुंधले आलोक में उनके फड़फड़ाते डैने जैसे किसी पुराने दुःस्वप्न के स्मृति-अंश हों । मध्यरात्रि की डूबती धूप में डबडबाए द्वीप ... एक जबरदस्त चाह । सबकुछ एक स्वप्निल, अशरीरी छायालोक में लिपटा जान पड़ता है लेकिन देखो तो कुछ भी स्वप्निल नहीं, कुछ भी अशरीरी नहीं -- अपने अनुभव पर ही अविश्वास होता — क्या हम छू सकते हैं ﴾पकड़कर रख सकते हैं ?﴿ उसको जो कभी दिखती

की सिम्फनी 'सागर' में छलछला आया था, स्वरों का फेनिल आलोक, फड़फड़ाहट (दिल की, पंखों की ?) क्रंदन, अपने निजत्व की सीमाओं को तोड़ता एक मदमाता ज्वार ।"[14] इसके बाद पूरा अगला पृष्ठ ऐसे असम्बद्ध से लगने वाले अस्थूल चित्रों का क्रम है और किसी एकांगी माध्यम से उसे ग्रहण करना संभव नहीं है । एक और जगह एक अलौकिक अनुभव का अनुपमेय चित्र —"पहाड़ों पर चांदनी का यह अद्भुत माया-जाल मैंने पहली बार देखा था और एक अलौकिक विस्मय में मेरी आंखें अनायास मुंद गई थीं । उस रात मुझे लगा था कि पहाड़ों में भी सांप की आंख-जैसा एक अविस्मृत, जादुई सम्मोहन होता है ... एक भुतैला-सा सौन्दर्य, जो एक साथ हमें आतंकित और आकर्षित करता है, जिसके मोह-पाश में बंधना उतना ही यातनामय है, जितना उससे मुक्त होना ।"[15] निर्मल वर्मा एक विशेष प्रकार के संयोजन का कौशल भी साध पाते हैं । यह संयोजन विभिन्न और कभी-कभी एक-दूसरे से अलहदा लगने वाले अनुभवों को उनकी विशिष्टता अक्षुण्ण रखते हुए अभिव्यक्त करने में है । "मेरे पैरों के नीचे गीली मिट्टी है, काई-कीचड़ में लिथड़े फूल हैं, रंग-बिरंगी तितलियां हैं, जो एक घास से उड़कर दूसरे घास पर बैठ जाती हैं । हवा में एक तेज-तीखी खुशबू-सी फैलने लगती है -- यह फूलों की नहीं, पत्थरों की खुशबू है, यह गन्ध सड़ते हुए पत्तों की खुशबू से मिलती है, उस गन्ध से मिलती है जो किसी पुरानी पेंटिंग के उखड़े, बासी रंगों से आती है । लगता है जैसे पेड़ों की छायाओं के संग पत्थरों का यह मंच धीरे-धीरे हिल रहा हो, पीछे पहाड़ियों के एम्फीथियेटर में किसी के पैरों की थाप झाड़ियों के बीच सरसराती-सी सुनाई दे जाती है और उसकी गूंज चारों दिशाओं को खटखटाकर पहाड़ी हवा में गुम हो जाती है ..."[16] यह कुछ वैसा ही है कि छायावादी कवि किसी प्राकृतिक दृश्य को देखता था तो उसके मन में कई स्मृतिचित्र एक साथ जग जाते थे और कभी-कभी उपमानों की झड़ी लग जाती थी । ऐसा लगता है कि लेखक किसी परिदृश्य को एक साथ कई तहों में देख पाता है । उस परिदृश्य का सौन्दर्य कई कोणों

से निर्मित होता है --"उस संगमरमर के पत्थर पर छनता हुआ आलोक ।" बात इतनी ही थी, लेकिन लेखक के लिए बात और भी कुछ है -- "प्रकाश, पीड़ा और पत्थर-इन तीनों के जादुई मेल से जिस अकेली करुणा का आविर्भाव हुआ था, वह इतनी तात्कालिक, इतनी 'अभी' और 'यहां' की चीज़ थी, कि कुछ देर तक मुझे विश्वास नहीं हो सका कि जिस 'व्यक्ति' की वह मूर्त्ति है, उसकी मृत्यु लगभग दो हज़ार वर्ष पहले हो चुकी थी ।"[17] यात्री किसी परिदृश्य को देखते ही एक अपना मन लेकर उसमें पैठता है । उसे ग्रहण करता है और जब अभिव्यक्त करता है तो हम पाते हैं कि इसमें कोई चीज़ पैबन्द की तरह नहीं है । व्यक्ति है, प्रकृति है और दोनों यात्री की स्मृति में आसव की तरह समाए हैं । इन्हें धीरे-धीरे सुलझाते हैं वे । खूब निकटता से, एहसास की समृद्धि के साथ प्रकृति को देखते हैं —"नीली-स्लेटी परतों में लिपटी यह धुन्ध इतनी सघन और ठोस है कि उसे चाकू से तराशा जा सकता है ।"[18] इस देखने में कोई बंधी हुई परिपाटी काम नहीं करती । कोई परिदृश्य एक साथ लेखक के इतिहास बोध और संस्कृतिबोध-दोनों को जागृत कर सकता है । फिर एक अलग चित्र बनता है—"नहान पर्व की छड़ी-मोमबत्ती सा जलता सूरज, जनवरी की सफेद धुन्ध पर पिघलता हुआ । अनेक प्रार्थनाओं से जुड़ा शोर-जो शोर नहीं है, न आवाज़ है, न कोलाहल-सिर्फ़ मनुष्य का अपनी आत्मा से एकालाप, जिसे सिर्फ बहता पानी सुन सकता है । यह पानी इन आवाज़ों को अपनी धड़कन में पिरोता हुआ किस विराट मौन सागर में लय हो जाएगा कोई नहीं जानता । दोनों धाराओं के बीच एक-एक काली रेखा दिखाई देती है । मैं समझता हूँ वह कोई दीवार है, संगम के बीच हिलती, घुलती, बदलती लाइन । लोग आते हैं, लाइन में डुबकी लगाते हैं, और फिर अपनी जगह दूसरों को दे देते हैं -- और वह नर-सेतु ज्यों-का-त्यों क़ायम रहता है । हर क्षण बदलता हुआ, किन्तु अपनी सम्पूर्णता में स्थिर और गतिहीन ।"[19]

जिन चीज़ों को सामान्यतः अनदेखा किया जा सकता है -- कोई ध्वनि, दृश्यखण्ड, हल्की-सी घटना आदि लेखक पकड़ता है और किसी बिम्ब के साथ इन्हें बिठाकर अमिट बना देता है। 'चीड़ों पर चांदनी' नामक अध्याय में अवसान, अर्थात् दिन की सक्रियताओं के अवसान, रात के गहराने और सबकुछ घिर जाने को चित्रित करते हुए लेखक आखिरी बस के बाज़ार के आगे कोने में ठहरने को भी नोट करता है। ऐसा करते हुए जो चित्र बनता है -- हमारे अनुभव से सांझा करते हुए बनता है, इसलिए याद रह जाता है। यह निर्मल वर्मा का अपना कौशल है।

अन्तर्पाठ

लेखक के स्मृतिचित्रों और वर्णनों के आलोक में उसके अध्ययन और साहित्य-कला सम्बन्धी स्मृतियों की झलक जगह-जगह देखी जा सकती है। थोड़ा और आगे बढ़ें तो यात्रा संस्मरणों में अन्तर्पाठ को लक्ष्य किया जा सकता है। 'ब्रेख्त और एक उदास नगर' में वह स्थल द्रष्टव्य है जब लेखक आइसलैण्ड जाने के लिए विदा होता है। उस समय के पात्र, अनुभव और सम्बन्धों के सूत्र अनायास ही 'वे दिन' की ओर ध्यान खींचते हैं। कई बार पाठक को यह अनुभव हो सकता है कि 'वे दिन' उसे यात्रा संस्मरणों की तरह लग रहा है। 'सुलगती टहनी' -- कुंभ मेले में श्रीनिवास जी से भेंट का सन्दर्भ पढ़ते समय पाठक को 'कौव्वे और काला पानी' की मूल समस्या और स्थितियां याद आ जाएंगी।

लेखक को लगता है "क्या बर्लिन से कोपनहेगन की यात्रा एक दूसरे स्तर पर ब्रेख्त से बैकेट तक की यात्रा ही तो नहीं है?"[20]

इस कथन के आधार पर कोई यह कहने के लिए पर्याप्त आधार पा सकता है कि ये यात्रा संस्मरण एक रचनाकार की रचनात्मक यात्रा के संस्मरण हैं । व्यस्तता के क्षणों में भी, जब एक लड़की उनकी ओर लड़खड़ाते कदमों से आती है तो उन्हें लगता है-- "मानो वह सीधे सार्त्र के किसी उपन्यास से बाहर निकलकर कहाँ आ गई हो ।"[21] इन संस्मरणों में कई निबन्ध मूलत: लेखक की साहित्यिक यात्रा के संस्मरण लगते हैं । 'देहरी के बार' के तीनों निबन्ध इसी कोटि में आते हैं । 'ढलान से उतरते हुए' में लेखक महान रचनाओं की दुनिया में एक परिचित की तरह चला जाता है । उनसे मौन एकालाप करता है । कई स्थलों पर, अनेक निबन्धों में, रचनासंसार में प्रवेश और बड़े रचनाकारों के साथ हो जाने का स्वभाव साफ़-साफ़ उभरा है । ऐसे कि ये अलंकरण हो गए हैं -- स्मृतिचिन्ह हो गए हैं और कभी-कभी लेखक की शैली का आवश्यक तत्व बन गए हैं । "क्या इसी कारण से नाबाकोव ने महान उपन्यास को दुनिया की 'महान परीकथाएँ' माना था ? नहीं, हम अपनी गाइड और मित्र एवा से कोई भी प्रश्न नहीं पूछते, न नाबाकोव के बारे में, जो अपना देश छोड़कर चले गए थे, न बावेल के बारे में, जिनकी मृत्यु सायबेरिया के किसी अज्ञात कोने में हुई थी ... लेकिन शहर और मकान वही है, जहाँ एक ज़माने में वे रहते थे, प्रेम करते थे, कहानियां लिखते थे ।एक दिन मास्को में चलते हुए एवा ने वह घर दिखाया था, जिसके अकेले कमरे में मॉयकोवस्की ने आत्महत्या की थी । चुप, शान्त, शाम की धूप में झिलमिलाता दुमंजिला मकान ।"[22] कलाओं के सम्बन्ध में लेखक की अपनी समझ है । गहरी रागात्मकता है इनके प्रति । किसी नगर की यात्रा का एकमात्र मुख्य उद्देश्य किसी थिएटर, किसी आर्ट गैलरी या किसी रचनाकार को देखने, समझने की पुरानी इच्छा पूरी करना हो सकता है । किसी जगह यात्रा का संक्षिप्त पड़ाव आया, तो लेखक यह चाहेगा कि फलां आर्टगैलरी के अनुभवों से गुज़र लें । "दिन-भर आर्ट-गैलरियां और म्यूज़ियमों का चक्कर

लगाकर जब हम अंधेरा होते थके - मांदे जहाज़ पर पहुंचते, तो दूर से ही समुद्र की लहरों की मुलायम-सी थपथपाहट सुनाई देती ।"[23] कलाओं के आन्तरिक संसार और इतिहास के अनुभवों का जो दबाव लेखक ने महसूस किया है उसको कहते समय कई अनुच्छेदों तक लेखक का प्रवाह बना रह जाता है और भूगोल में उसकी भौतिक उपस्थिति पाठक के लिए विस्मृत हो जाती है । स्वयं लेखक को लगता है "गैलरी से बाहर निकला, तो लगा जैसे दुनिया सचमुच बहुत छोटी हो गई है ।"[24] कोपेनहेगन की यात्रा को 'रोती हुई मर्मेड का शहर' नाम देने के पीछे लेखक की यह कल्पना है कि "किसी रात केबिन से बाहर देखते हुए समुद्र की लहरों पर अचानक ऐण्डर्सन की रोती हुई मर्मेड की झलक पा लूंगा ।"[25] ऐसा कई बार होता है । पुराने कलाखण्ड अचानक लेखक की रचनात्मकता को पंख दे देते हैं, लेखक भावविभोर होकर स्वयं को उन कलाकृतियों और कलाकारों के साथ जोड़ लेता है और कहता चला जाता है—"जब कभी एडिनबरो की आर्टगैलरी के बारे में सोचता हूँ, आंखों के सामने घूम जाते हैं तितियान के चित्र... लगता है, जैसे मानव-आत्मा अपने सब बन्धनों को तोड़कर सुनहरे असीम आलोक के ज्वलन्त रंगों में फैल गई है । तितियान के देवदूत असीम दूरियां लांघते हुए एक ऐसे मांसल आनन्द को खींच लाते हैं जिसमें रहस्यमय अथवा अशरीरी कुछ भी नहीं है, धरती के ऊपर उड़ते हुए भी जो धरती की गन्ध और आत्मीयता को नहीं छोड़ पाते और बरबस मुझे बेरन्सन के शब्द याद हो आते हैं : "पुर्नजागरण की सच्ची पवित्र सन्तानें, ज़िन्दगी के भय और ओछेपन से सर्वथा मुक्त ।" गैलरी में मेरे प्रिय चित्रकारों—रैम्ब्रां, हालास और स्टील के भी चित्र हैं, किन्तु इतने कम कि भूख नहीं मिटा पाते । सिर्फ एक एलग्रेको ।... दीवार के एक कोने में बैलिनी के वे उद्‌गार उद्धृत किए गए हैं जो उन्होंने 'सेवन सेक्रामेन्ट्स' को पहले-पहल देखकर प्रकट किए थे । काश, मैं उन शब्दों को अपनी नोटबुक में लिख पाता ।"[26]

—— x x ——

परिवेश

निर्मल के लिए अधिकांश चीज़ें जीवन्त हैं, उन्हें पकड़ा जा सकता है। वे परिवेश को इस प्रकार निर्मित करते हैं कि एक जीवित, गतिशील सूत्र झलकने लगता है। चीज़ों का अपना अस्तित्व और अपना राग होता है, निर्मल उन्हें पकड़ते हैं। सिर्फ़ मनुष्य ही पात्र नहीं हैं इनके यहाँ, परिवेश भी पात्र है। तमाम चीज़ें संयोजित होकर एक समग्र उपस्थिति बन जाती हैं और लेखक इनसे पात्र का काम लेता है। "पुल के पास हेनरी चतुर्थ की मूर्त्ति है और उसके नीचे, सेन से सटा एक छोटा-सा बाग़ ... किनारे पर इक्के-दुक्के मछुए दिखाई दे जाते हैं। ऊपर पुल की सबसे ऊँची सीढ़ी पर एक कैनवास रखा है — आँखें उठती हैं, उस दृश्य की ओर, जो न जाने कितने टूरिस्ट पोस्टकार्डों पर अंकित हैं ... आगे की ओर पोंत-न्यूफ़, किनारे पर ऊँघते मछुए, सेव के एम्बेंकमेंट पर सेकण्डहैण्ड किताबों और घटिया चित्रों की दुकानें ... हवा में फरफराते पिक्चर-पोस्टकार्ड और इन सबको 'रिलीफ़' देता हुआ नात्रेदाम।"[27] किसी परिवेश को उसकी अपनी अस्मिता के साथ वहीं चित्रित कर विशिष्ट बनाने का कौशल कई जगह दिखाई देता है। पैरिस के एक हिस्से को देखते हुए — "भ्रम होता है इन्हें पहले कभी देखा है खास इसी ऐंगिल से, कच्ची धूप में सिमटी किसी पुराने नगर की छायाएँ और अन्तहीन मौन, छोटी-सी सूनी गली, दोनों तरफ़ एक लम्बी क़तार में लगे ताश के पत्तों से घर, ऊँची-नीची छतों का एक जादुई, उदास सम्मोहन।"[28] लेकिन पूरा पेरिस देखने में कैसा लगता है, कमोबेश वैसा ही, जैसा इल्या इहरनबुर्ग के संस्मरणों में पाया था — बहुत कम बदला है — "तीखे कुहरे में डूबा हुआ पारदर्शी नगर — एक दूसरे से मिलते-जुलते मकान, रेस्तराँओं के टैरेस पर धूप सेंकते छात्र-छात्राओं के के झुण्ड — सब वही है, जो कभी पहले था। 'समूचा शहर एक जंगल है — नीली छायाओं में घिरा हुआ'। दूर चर्चों की मीनारें हैं,

चौराहों के बीच खड़े हैं विजय-स्तंभ, बुलीवारों के कोनों में खड़े आलिंगनबद्ध प्रेमी ... । समय वहाँ ठिठक गया है ।"[29] पहले भी संकेत किया है कि लेखक किसी भी परिदृश्य को तमाम कोणों और स्तरों से गुज़रकर ग्रहण करता है । इससे यह संभव हो पाता है कि कोई वस्तु, सिर्फ़ वस्तु न रह जाय । लेखक का चित्रण इस तरह सिर्फ़ वस्तुनिष्ठ न रह जाय । दूसरी ओर, लेखक बिल्कुल आत्मपरक भी नहीं होता । एक संतुलन है, कला का रचाव है कि कोई दृश्यखण्ड एकदम नया होकर उभरता है । किसी कपड़े के बीच का कोई हिस्सा जैसे पच्चीकारी के कारण दूर से ही (अलग-थलग नहीं) विशिष्ट और आकर्षित करने वाला लग रहा हो ।

लोकराग

लेखक ने यह कोशिश की है कि वह स्थानीय संस्कृति को समझे । जिन लोगों के बीच रहने का मौक़ा मिला, उनके स्वभाव और चरित्र को जांचने-समझने के प्रयास हुए हैं । एक चिन्तक के रूप में लेखक की दक्षता इस तथ्य में निहित है कि किसी समाज और संस्कृति को जानने का प्रयास करते हुए उन्होंने बने-बनाए मूल्य इस्तेमाल नहीं किए हैं । तुलना के प्रयास कहीं-कहीं दिखते हैं लेकिन निर्णय, शायद नहीं । किसी समाज की संस्कृति को ठीक-ठीक समझने और सही सन्दर्भ में समझने के लिए एक उदार और साहसभरी पहल तो होनी ही चाहिए । लेखक ने किसी समाज की बात करते समय वहाँ के ऐसे शब्दों को पकड़ने की कोशिश की है जो उस समाज को खोलते हों । इसके अलावा वहाँ की लोककथाओं और लोकगीतों को ध्यान से सुना है । कोपेनहेगेन में डेनिश भाषा का एक गीत लेखक ने सुना और उसका आशय लिखा है । फिर एक और जगह वे लिखते हैं --

"... या कभी 'इन्टरनेशनल ब्रिगेड' का कोई प्रयाण-गीत जो

मुद्दत पहले स्पेनिश गृह-युद्ध के ज़माने में गाया जाता था या 'टॉम ब्राउन्ड बॉडी लाइज़ ए मोल्डरिंग इन द ग्रेव' -- या फिर अवान्ती पोपोलो जिसे गाते समय समूचा जहाज़ गूंजने लगता था कभी-कभी बहुत पुराना जहाजियों का गीत-जो हमें हमेशा उदास कर देता -- 'माई बौनी इज ओवर द ओशन, माई बौनी इज़ ओवर द सी - ब्रिंग बैक, ओ ब्रिंक बैक माई बौनी टु मी' ..."[30] 'अंग्रेज़ों की खोज में' पूरा अध्याय ही इस समाज को नए ढंग से समझने का प्रयास है । इस तरह के गंभीर प्रयास उन्होंने अपने निबन्धों में किए हैं । 'सुलगती टहनी' एक विशाल और प्राचीन जाति के अनन्त विश्वास का रहस्य और जीवन्तता के सूत्रों को जानने का प्रयास है । इसी प्रकार लेखक ने चरित्रगत विशेषताओं को परखने का प्रयास किया है --"नार्वेई जाति की यह रसिकता एक निश्चल भोलेपन, सादगी और बहुत ही कोमल संवेदनशीलता का प्रतीक है ... ऐसे गुण, जो दुनिया-भर के पहाड़ी लोगों में मिल सकते हैं । उनमें न तो डेन लोगों की आडम्बरप्रियता और न स्वीडनवालों की अभिजात-संकुलता दिखाई देती है । इस दृष्टि से वे आइसलैण्डी-निवासियों से अधिक नज़दीक पड़ते हैं।"[31]

------- x x -------

विशिष्टता

निर्मल वर्मा की विशिष्टता क्या है ? प्रश्न खासा मुश्किल है । कुछ प्रयास किए जा सकते हैं कि उन चीज़ों को पकड़ें जो इन्हें एक अलग ज़मीन देती हैं । निर्मल वर्मा कुछ कहने के लिए यों ही प्रस्तुत नहीं होते, वे एक 'मांसल पृष्ठभूमि' रचते हैं, फिर अनुभूति की, उसमें सूक्ष्म कढ़ाई करते हैं । इनकी कहानी पर बात करते समय नित्यानन्द

तिवारी ने जो अनुभव किया है उसकी प्रासंगिकता हमारे लिए है। वे लिखते हैं --"छोटे-छोटे तैरते हुए दृश्यों, स्पर्शों और ध्वनियों के संवेदनात्मक कम्पन से वे गहन और अभिभूत कर देने वाला बौद्धिक वायुमंडल उत्पन्न कर लेते हैं। शिल्प और भाषा का यह कमाल सिर्फ निर्मल वर्मा की उपलब्धि नहीं है, यह हिन्दी-कथा साहित्य या पूरे हिन्दी साहित्य की उपलब्धि है।"[32] आगे वे निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में मिलने वाले उस रहस्य, आकर्षण और कोमल तनाव की वजह, अपने ढंग से बताते हैं। यात्रा-संस्मरणों में इस पर्यवेक्षण की सत्यता खोजी जा सकती है--"निर्मल जी जब चीज़ों का इस्तेमाल अपनी कहानी में करते हैं तो उन्हें पहले उनके भीतरी एकान्त में ले जाते हैं और दूसरी चीज़ों से पर्याप्त दूरी पैदा कर लेते हैं। चाहे वह धूप, रोशनी, टेलीफ़ोन, कोई आवाज़ या चरित्र कुछ भी हो। सभी चीज़ें अपने भीतरी एकान्त में अति सावधान और विशिष्ट होने के कारण रहस्यमय ही उठती हैं। उनकी कहानी में एक ऐसा भूखण्ड है जिसमें कई तरह के एकान्त टहलते हैं और वे एक दूसरे के एकान्त में प्रवेश नहीं करते बल्कि उनके एकान्त को और अधिक पुष्ट और मान्य करते हैं।"[33] अभी जिन सूत्रों को हम रेखांकित कर रहे थे उनकी कुछ झलक इन पंक्तियों में मिल सकती है। वह 'कमाल', आकर्षण, रहस्य और बहुलता में पाए जाने वाले एकान्त कैसे रूप लेते हैं -- "देखो... निकलस द स्ताल के रंगों का निशा-संगीत, मूक स्पेस के भीतर भटकती हुई एक भुतैली-सी अनुगूंज। आकृतियों पर गिरता हरा आलोक, यह लेज़े हैं, मशीनों का मांसल स्वप्न, जिसे केवल मौलिक चित्र ही आलोकित कर पाते हैं, लेज़े का वह स्वप्न अनुकृतियों में कहीं भी दिखाई नहीं देता। रोशनी शिफ्ट होती है, स्मृति-मंच के दूसरे कोने में ... यूनेस्को की विराट् इमारत ... दीवारों पर मीरो की नशीली डगमगाहट--न, यह म्यूरल नहीं है, यह तितली का स्फुरण है, जो हवा में एक रहस्यमय गति छोड़कर ग़ायब हो गया है ... लूव्र का टेरेस ... बहुत ही निखरा दिन।

कॉफ़ी पीते हुए अनेक चित्र याद आते हैं, वात्यू के, वर्मीर के--
एक अजीब-सा शान्तिलोक, जिसमें न रेनाय सान्स का आलोड़न
है, न हमारे युग की नर्वस अकुलाहट ... .34

निर्मल वर्मा की भाषा और संवेदना को साफ़ -- साफ़ अलगाया जा सकता है किसी भी दूसरे लेखक की भाषा और संवेदना से । उन्हें भाषा में छिपे संगीत का ज्ञान है और इस संगीत की विभिन्न छवियों का प्रयोग करने की सिद्धहस्तता भी हासिल है । हमारे अनेक अनुभवों को, मानो वे एक ऐन्द्रिक भाषा के सहारे व्यक्त कर रहे हैं जिनमें ध्वन्यात्मक स्तर भी गुंफित हैं । यह भाषा, जैसा कि आगे कुछ उदाहरणों से स्पष्ट होगा, एकदम संवेदना से अलग एक अवधारणा के रूप में व्याख्यायित नहीं हो सकती । अर्थात् हम भाषा को स्वयं संवेदना होती हुई कई बार देख सकते हैं । हमेशा नहीं । 'सिंगरौली -- जहाँ कोई वापसी नहीं' का उदाहरण रोचक है । इस यात्रा - संस्मरण को पढ़ते हुए निर्मल वर्मा को याद करना मुश्किल है - कम-से-कम भाषा और शिल्प के स्तर पर । इसमें ज्यादा खुलापन है, सपाटबयानी भी है, वर्णनात्मकता का ज़ोर है । लगता है लेखक रम नहीं रहा, हाँ, आक्रोश उसे है । तेवर जैसे भाषण का है, संवेदना जैसे अखबार की है । अन्त होता है अध्याय का, और अन्तिम हिस्सा फिर निर्मल वर्मा की विशिष्ट शैली से संपृक्त हो उठता है । लगता है, 'निर्मलपना' जैसी कोई चीज़ है तो वह अब मिली । फिर, निर्मल की भाषा कई स्तरों पर अनुभव को, यथार्थ को संभालती है । इसमें नाट्यात्मकता है, दृश्यात्मकता है और चिन्तन को निरा बौद्धिक व्यायाम न बनने देने की क्षमता भी है । "कविता में काव्यात्मक संवेदना काम करती है जबकि उपन्यास में काव्यात्मक विवेक । कविता दोनों में समान है । मैं ज़ोर इस बात पर देना चाह रहा हूँ कि यह विवेक, महज़ बुद्धि के अर्थ में नहीं बल्कि विचार के उस अर्थ में जहाँ सम्बन्धों का अवधारणात्मक चिन्तन होता है यही नहीं बल्कि सम्बन्धों के बोध का एक अलग ही

धरातल होता है ।"[35] निर्मल वर्मा के इस कथन से हम यह अर्थ ले लेते हैं कि गद्य में एक काव्यात्मकता होती है या होनी चाहिए । इनके गद्य इसका प्रमाण हैं । गद्य में कविता-लेकिन जहाँ गद्य भी अपनी शर्तों पर हो और कविता का विवेक भी हो -- "बादल, बर्फ, चांदनी ... तीनों के अलग-अलग रंग थे, अलग-अलग लय थी । उस क्षण मुझे लगा मानो किसी मायावी संगीत के चमकीले सुरों ने समस्त वन्य-स्थल को अपने स्वप्निल, निस्पन्द पंखों के भीतर समेट लिया हो -- लगा था जैसे चांदनी के रेशमी डोरों से खिंचती हुई खिलनमर्ग की बर्फीली पहाड़ियां होटल के कमरे के पास तक सरक आयी हों और खिड़की के बाहर हाथ फैलाते ही मैं उन्हें छू लूंगा ।"[36]

इसी कविता के कारण इनके शब्दों में अर्थ ही नहीं मिलता, अनुगूंजें मिलती हैं । इन्होंने कहानी पर बात करते समय 'कविता के जमे हुए समय को पिघलाकर'[37] उसे कथ्यात्मक क्षेत्र में बहाने की बात की है । यह बात यात्रा - संस्मरणों में बार-बार याद आती है । खास तौर पर उन अध्यायों में जो किसी खास व्यक्ति या एक घटना या परिदृश्य को केन्द्र बनाकर नहीं चलते । एक ठोस परिवेश, उसमें स्वयं की उपस्थिति और अनुभव और इन सबको ठीक-ठीक संप्रेषित करने के लिए सटीक शब्द, स्फीति का अभाव - यह लेखक सहजता से कर पाता है --"मुँह अंधेरे सीटी सुनाई देती है -- घनी नींद में सुराख बनाती हुई -- एक क्षण पता नहीं चलता, मैं कहाँ हूँ, किस जगह हूँ, कौन-सा समय है ? आँखें खुलती हैं, तो ढेर-सा अंधेरा गटागट पीने लगती हैं, जैसे मुँह की प्यास आँखें बुझा रही हैं । याद आता है मेरे नीचे मेरा स्लीपिंग बैग है, मेरी यात्राओं और यातनाओं को ढोता हुआ । मैं जाग गया हूँ - लेकिन मेरी समूची देह गरमाई के घेरे में सो रही है ।"[38]

निर्मल वर्मा एक गहरी आत्मीयता के साथ कलम उठाते हैं । गांवों को देखने की एक दृष्टि रेणु की हो सकती है तो दूसरी दृष्टि 'राग दरबारी' के लेखक की भी । निर्मल में 'रेणु' की दृष्टि है ।

कुंभ के मेले को देखने और कहने के कई उदाहरण हैं । पत्रिकाओं से लेकर अख़बारों तक में कुंभ पर लिखा जाता रहा है । लेकिन 'सुलगती टहनी' जैसी रचना सिर्फ़ निर्मल के हिस्से में ही आ सकती थी । इसी आत्मीय स्पर्श का फल है कि एक विशिष्ट प्रकार की संपृक्तता, तरलता और ठहर-ठहर कर समय को जी लेने की मानवीय ललक से भरपूर गरमाहट निर्मल के लिए एक अलग पहचान बनाती है । ऐसी छोटी-छोटी घटनाएँ भी वे जोड़ लेते हैं -- भूलते नहीं -- "वह उठ खड़े हुए, हाथ मिलाया और फिर अचानक कुछ सोचकर हमें बारी-बारी से बाँहों में लपेट लिया ।"[39] सम्पूर्ण यात्रा -- संस्मरणों को पढ़ते हुए कोई ऐसा चरित्र याद नहीं रह जाता जो आक्रोश पैदा करे । मानवीय सम्बन्धों का भरा-पूरा संसार है इनमें । सम्बन्धों और इनके सत्य को लेकर निर्मल इतने आग्रही हैं कि एक पूरा उपन्यास ही इसे तलाशने के लिए लिखा गया । असंगतियों को यदि वे देखते हैं तो उसे कहने और समझाने का अपना अलग तरीक़ा अपनाते हैं । सारे आख्यान, पूरे या अधूरे, अपने पूरेपन और अधूरेपन के साथ कह लिए जाते हैं ।

'सुलगती टहनी' में निरंजनी साधुओं के जुलूस का चित्रण करते हुए वे असंगतियां देखते हैं लेकिन एक प्रवाह में, आक्रोश में नहीं । वह देखते हैं -- "घुड़सवार जिस गुस्से और आक्रोश में घोड़े को पीट रहा है, खींच रहा है, घोड़े की आँखें जिस काले आतंक में फट रही हैं, मुँह से झाग बह रहा है — उससे पता चलता है कि वह तमाशा नहीं, धूप में हताश जानवर की थरथराती देह है ।"[40] वे यह भी देख रहे हैं -- "सुबह के स्नान की हड़बड़ अब नहीं है - धर्म और पुण्य कमाने का उत्साह मन्द पड़ गया है ।"[41] इसके अलावा मेले में घूमते हुए एक मठ के 'गुरू जी' और उनके शिष्यों के वार्तालाप का जो चित्र उन्होंने खींचा है वह कई असंगतियों को उजागर करता है । लेकिन, जैसा मैंने कहा यह आख्यान भी कह दिया गया, लेकिन यह भी कि कोई निर्णय नहीं यहाँ, ठहराव नहीं है -- आगे जाने की निरन्तरता है । ऊपर

वर्णित कुछ बिन्दुओं को परखने के बाद यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्राप्ति, यह उपलब्धता एक विशिष्टता है । इसलिए एक साक्षात्कार में, अभी कुछ दिनों पहले निर्मल वर्मा ने कहा -- "दरअसल समकालीन गद्य थोड़ा पिछड़ रहा है । इसकी वजह यह है कि गद्य के लिए जो धैर्य और अवकाश चाहिए वह आज के लेखक के पास नहीं है । अच्छे गद्य के लिए तकनीकी परिश्रम भी करना पड़ता है । एक गद्य लेखक को सम्पूर्ण लेखक होना पड़ता है ।"[42]

-------- x x --------

—— सन्दर्भ ——

1. चीड़ों पर चांदनी, पृ. –18
2. पूर्वग्रह 66, जनवरी -फरवरी 85, –निर्मल वर्मा का लेख 'कलाकृति और आलोचना', पृ. 47
3. " " " –44–45
4. " " " –46
5. " " " –41
6. पूर्वग्रह (66), में निर्मल वर्मा का लेख 'कलाकृति और आलोचना', पृ. –45
7. मलयज, स्मृति में बन्द रचना, डा. प्रेमसिंह सम्पादित 'निर्मल वर्मा : सृजन और चिन्तन' में संकलित, पृ. –44
8. —— वही ——, पृ. –44
9. कलाकृति और आलोचना पृ. –45
10. पूर्वग्रह, जुलाई-अक्तूबर 1978, पृ. –23
11. कलाकृति और आलोचना, पृ. –45
12. सुलगती टहनी, कला का जोखिम, पृ. –105
13. अंग्रेज़ों की खोज में, हर बारिश में, पृ. –44
14. चीड़ों पर चांदनी, पृ. –65
15. चीड़ों पर चांदनी, पृ. –132
16. चीड़ों पर चांदनी, पृ. –134
17. हर बारिश में, पृ० - 52
18. चीड़ों पर चांदनी, पृ. –135
19. कला का जोखिम, पृ. –108
20. चीड़ों पर चांदनी, पृ. –48
21. चीड़ों पर चांदनी, पृ. –49
22. ढलान से उतरते हुए, पृ. –112
23. चीड़ों पर चांदनी, पृ. –44
24. चीड़ों पर चांदनी, पृ. –46

25. चीड़ों पर चांदनी, पृ.-45
26. चीड़ों पर चांदनी, पृ.-57-58
27. चीड़ों पर चांदनी, पृ.-113
28. चीड़ों पर चांदनी, पृ.-113
29. चीड़ों पर चांदनी, पृ.-118
30. चीड़ों पर चांदनी, पृ.- 60
31. चीड़ों पर चांदनी, पृ.- 37
32. निर्मलवर्मा : सृजन और चिन्तन, पृ.-29
33. निर्मलवर्मा : सृजन और चिन्तन, पृ.-30
34. चीड़ों पर चांदनी, पृ.-116-117
35. पूर्वग्रह, जुलाई-अक्तूबर 1978, पृ.-29
36. चीड़ों पर चांदनी, पृ.-132
37. ढलान से उतरते हुए, पृ.-35
38. कला का जोखिम, पृ.-105
39. ढलान से उतरते हुए, पृ.-122
40. कला का जोखिम, पृ.-115
41. कला का जोखिम, पृ.-115
42. जनसत्ता 'सबरंग', 10 नवम्बर 96, पृ.-36

——— x x ———

— अध्याय-5 —

निर्मल वर्मा : एक विचार
(पर्यवेक्षण : दृष्टि)

इन यात्रा- संस्मरणों के अनोखेपन से हम शिल्प और भाषा के स्तर पर परिचित हैं, लेकिन यह विशिष्टता कथ्य या पर्यवेक्षण के स्तर पर भी उतनी ही प्रबल है, स्पष्ट है । लेखक जिन चीज़ों का ज़िक्र प्राय: करता है, जो घटनाएँ, अनुभव और दृश्य उसके पर्यवेक्षण के अधिकांश हैं, उनसे लेखक की दृष्टि का अनुमान-मात्र लगाया जा सकता है । पूर्व अध्यायों में इस बात की चर्चा होती रही है कि यात्रा के उद्देश्य, यात्री का मानस और वैचारिक योजना से संस्मरणों की रूपरेखा तय होती है । निर्मल वर्मा एक परिचित रचनाकार हैं अब हमारे लिए, कि हमने उनके रचना संसार और शैली के बारे में पिछले अध्यायों में बातें की हैं । मोटे तौर पर चीज़ें तीन रूपों में लेखक के लिए उल्लेखनीय बनती हैं – आत्मपरक रूप में, ऐतिहासिक अनुभव के रूप में और कला तथा साहित्य के संसार के अंग के रूप में । लेखक अपनी यात्राओं के दौरान जिनसे मिलता है, जिन-जिन जगहों की खोज करता है और जो मुद्दे उसके विमर्श में आते हैं, उससे, यह न कहना संकोच होगा कि एक बौद्धिक, विशिष्ट, उदार और द्रष्टा व्यक्ति की छवि तो उभरती है पर एक लोकप्रेमी या प्रचलित शब्दावली में कहें तो जनवादी रचनाकार की छवि नहीं उभरती । मदिरा, मदिरापान, इनके विभिन्न प्रकार, विभिन्न समाजों का इसके प्रति व्यवहार, तथा मदिरालयों के लम्बे प्रसंग कई स्थलों पर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं । लेखक ने इसके बारे में कोई निर्णय नहीं दिया है लेकिन सम्पूर्ण साहित्य से होकर गुज़रते-गुज़रते पाठक को इतने सबक मिलते हैं कि वह भी एक सबल, अकथित तर्क के पाले पड़कर लेखक के साथ किसी 'पब' में जा बैठता है । 'चीड़ों पर चाँदनी' का पहला ही पृष्ठ मदिरा-विमर्श से खुलता है और जिन शब्दों का भाषावैज्ञानिक विपर्यय करने की कोशिश लेखक ने की है उनमें अधिकांशत: इसी विमर्श से जुड़े हैं, जैसे-होस्पोदा, स्काउल आदि । "हाँ,

ब्रेख्त के बाद बीयर, बुरा ख्याल नहीं है ।"[1] 'ब्रेख्त' और बीयर का सह-सम्बन्ध कार्य-कारण सम्बन्ध की गरिमा लिए मज़बूत बना रहता है । "कभी-कभी घर बदलते समय जब हम अपना सामान सन्दूक में रखते हैं, तो कुछ चीज़ें कभी नहीं छूट पाती"[2], जैसे शराब की कोई बोतल । "न जाने उस शाम हम कितनी दफा एक 'बार' छोड़कर दूसरी, और दूसरी छोड़कर तीसरी में भटकते रहे थे । कभी हम खुद बाहर चले जाते थे, कभी ऐसा भी होता था कि हमें ज़बरदस्ती बाहर कर दिया जाता था ।"[3] लेखक ने, ख़ास तौर पर अपनी यूरोप-यात्राओं के दौरान, समाजों और जनसमुदायों के बारे में जो छबि बनाई है, उसमें आम जन का कितना योग है, नहीं कहा जा सकता । लेखक किसी विद्यालय, विश्वविद्यालय, स्लमशरिया, सामाजिक संस्थान, ग्रामीण समाज और स्वयंसेवी संगठनों को प्रायः नहीं जाता और उनका कोई ज़िक्र नहीं है । क्योंकि "हम बार में बैठे थे, उससे सटा 'डान्सिंग हॉल' था, जहाँ डेन लड़कियां, यात्री अमरीकी सैनिक, वेश्याओं के दलाल, 'स्ट्रीट-वॉकर्ज़' वे सब थे – जिनके लिए हर रात 'आखिरी रात' के अधीर, हताश, जादुई, सम्मोहन से भरी होती है । 'बार' का दरवाज़ा बार-बार खुलता था, लड़के-लड़कियों के गुच्छे आते थे – कुछ देर पीने के बाद वे ठिठके-से खड़े रहते थे, और फिर भीड़ का नया रेला उन्हें पीछे अज्ञात कोनों में धकेल देता था ।"[4]

कला-संस्थानों और महान रचनाकारों के प्रति लेखक का आकर्षण तमाम स्थलों पर व्यक्त हुआ है । "मेरे लिए बर्लिन आने का सबसे बड़ा आकर्षण भी यही रहा है"[5], अर्थात् 'बर्लिन-एन्सेम्बल' में ब्रेख्त का एक नाटक । लेखक ने जहाँ-जहाँ कदम रखा है – इतिहास को जीने की कोशिश की है । इतिहास के वर्त्तमान प्रसारण को पकड़ने की कोशिश है । "शीत-युद्ध की इतनी नंगी, बेलौस तस्वीर शायद यूरोप के किसी शहर में दिखाई नहीं देती"[6] जितनी बर्लिन में ।

ये यात्रा-संस्मरण लेखक के जीवन-वृत्त में आए एक ऐतिहासिक बदलाव का दस्तावेज़ भी हैं । मार्क्सवाद के प्रति निर्मल वर्मा का दृष्टिकोण

और बाद के दिनों में इस दृष्टिकोण में एक स्पष्ट विचलन, चर्चा का विषय रहा । यह 'मोहभंग' क्यों कर संभव हुआ, इसके लिए कुछ अध्याय तो खासे महत्वपूर्ण हैं । 'प्राग-एक स्वप्न' और 'अंधेरे के खिलाफ' इसलिए भी इतने मार्मिक बन पड़े हैं कि लेखक ने घायल मर्मस्थल को साथ लिए उस दु:स्वप्न को सहने का प्रयास किया है जिसने एक देश, एक आस्था, एक विचारधारा और एक भविष्यत् स्वप्न पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था । विचारधाराओं के साथ मनमाने और षणयंत्रपूर्वक खिलवाड़ के उदाहरण इतिहास में बहुत पहले से भी मौजूद हैं, हमारी अपनी सदी में ये खिलवाड़ और भी हुए, छद्म नामों से, सूक्ष्म उपकरणों से । अन्तत: कुछ मिलाकर विचारधाराएँ किसी निर्धन की आशाएँ सिद्ध हुई हैं । अब समाजवाद ? "जिस 'समाजवाद' की रक्षा टैंकों और संगीनों के बल पर की जाय, उसे 'समाजवाद' कहना भाषा का बलात्कार करना है, ऐसा ही बलात्कार मुद्दत पहले गोयबल्स ने किया था । उसकी सेनाएँ भी हर देश को 'यहूदियों और कम्युनिस्टों' से मुक्त करवाने आयी थीं, ताकि 'यूरोपीय संस्कृति' की रक्षा की जा सके । आज प्राग में सोवियत सेनाओं को देखकर लगता है कि हिटलर का जितना सम्बन्ध यूरोपीय संस्कृति से था उतना ही सम्बन्ध इन सेनाओं का समाज से है । अचरज तो सिर्फ इस चीज़ पर होता है कि सोवियत सेनाओं को अपनी भाषा और बहानों पर भी पूरा विश्वास नहीं, उन्हें अपने आक्रमण को सही सिद्ध करने के लिए गोयबल्स की ही भाषा और तर्कों का सहारा लेना पड़ेगा ।"[7] एक बातचीत में निर्मल वर्मा ने साहित्य सम्बन्धी कुछ समस्याओं के सन्दर्भ में अपने प्राग-प्रवास को याद किया है।उन दिनों पुस्तकों पर सेंसरशिप, दमन, पाबन्दियां तथा नियंत्रण का चरम था और उस समय को प्राय: 'स्टालिनिस्टिक टेरर' के नाम से जाना गया । वहाँ उन्होंने महसूस किया कि एक अधिनायकवादी व्यवस्था के भीतर कथित सेंसरशिप कमज़ोर और ढीला होता था । चेक समाज में ऐसा ही था, विशेषकर साहित्य के क्षेत्र में । वैसे भी चेक समाज ने संसार के समक्ष एक नया प्रयोग किया था । दुब्चेक के नेतृत्व में इस देश ने मार्क्सवाद के माध्यम से एक 'रेनेसां' उत्पन्न कर

दिया था । मार्क्सवाद को पुनर्जीवन, गंभीर और निरन्तर बहसें बाहर की दुनिया को चकित कर रही थीं । "किन्तु खुली हवा की यह विशेषता है कि वह बन्द सींकचों और तालों के बीच भी रास्ता बना लेती है और सोवियत संघ के वर्त्तमान नेताओं के लिए यह ख़तरे की निशानी थी । जो ख़तरा एक समय ज़ार को था, वही एक दिन अपने को 'मार्क्सवादी' कहने वाले क्रान्तिकारियों के लिए उत्पन्न हो जाएगा, यह देखकर अचंभा होता है और सोवियत नेता सबसे अधिक भयाक्रान्त थे - चेक आन्दोलन से उतना नहीं, जितना अपनी जनता से जो स्वयं ताज़ी हवा के लिए लालायित दिखाई देती है । आकस्मिक नहीं कि सोवियत नेताओं के लिए चेकोस्लोवाकिया में होने वाला 'कम्युनिज़्म में प्रजातंत्र' एक ऐसी छूत की 'बीमारी' थी, जो रफ़्तः - रफ़्तः पोलैण्ड, 'हंगरी और स्वयं उनके देश को दूषित' कर सकती है ।"[8] लेकिन इस घोर राष्ट्रीय संकट की घड़ी में चेक जनता का जो चरित्र उभरकर आया वह लेखक के लिए उल्लेखनीय है । लेखक ने महसूस किया "किताबों के फार्मूलों में नहीं, बल्कि ठोस जीवन-व्यवहार में पता चला कि प्रौढ़ जाति की प्रौढ़ संस्कृति क्या चीज़ होती है ।"[9] अपने शत्रु-देश के प्रति कोई घृणा नहीं, आक्रोश नहीं । वे जानते हैं कि इस घड़ी में कोई पश्चिमी देश सहायता के लिए नहीं आएगा क्योंकि वे 'कम्युनिस्ट' हैं और कम्युनिस्ट देश नहीं आएंगे क्योंकि वे प्रजातंत्र में विश्वास रखते हैं । इसलिए वे विरोध और संघर्ष के अपने रास्ते जानते हैं, धैर्यपूर्वक उनका अनुसरण करते हैं । एक छोटा-सा देश बिना विलाप और गिड़गिड़ाहट के दुनिया के दो अतिवादी पाटों के बीच एक सशक्त, दृढ़ लेकिन अहिंसक संघर्ष जारी रख सकता है, यह तकनीक और राष्ट्रीय इच्छा-शक्ति क्या सुलभ है ? इसलिए लेखक प्राग की शान्त गलियों में चलता हुआ सोचता है—"मैंने अपनी ज़िन्दगी के सर्वश्रेष्ठ और शायद सबसे निर्णायात्मक वर्ष इस देश में गुज़ारे हैं ।" इतना ही नहीं—"क्या अपने दस्तख़त देने से ही मैं कभी उसके प्रति अपना आभार-और अंतहीन कृतज्ञता-चुका सकूंगा ?"[10] इतना होने के साथ और बहुत

कुछ हो चुकता है । 'बल्तावा', 'मोस्कवा' और 'गंगा' में बहुत पानी बह चुका होता है -- "अपने चेक मित्रों के साथ मैंने भी कुछ महीनों के लिए वह स्वप्न जिया था -- जो आज सोवियत टैंकों के नीचे लिथड़ा पड़ा है । मुझे अपने मोह-भंग पर इतना दुःख नहीं होता - सिर्फ रह-रहकर अपनी बेबसी का अहसास ज़रूर कोंचता है । इस चीज़ का दुख भी होता है कि मेरे लिए भविष्य में सोवियत संघ कभी वह नहीं रह सकेगा, जो कभी था । हमेशा उस पर चेकोस्लोवाकिया की छाया मंडराती रहेगी । बचपन के स्वप्न की तरह वह हमेशा के लिए खो गया है ।"[11]

विचारधारा के साथ आरोपण को नत्थी किया जाता है । विचारधारा या तो सचेत रूप से अपनाई या ओढ़ी जाती है, या थोपी जाती है । लेकिन इन सभी स्थितियों में विचारधारा और मानव-आचरण के बीच असंतुलन और दोहरेपन से पूरी तरह इन्कार नहीं किया जा सकता । इससे दो निष्कर्ष निकल सकते हैं - या तो विचारधारा मानवीय, यथार्थ-वादी और अकृत्रिम नहीं, या मानव-समूह विशेष प्रस्तुत विचारधारा के लिए स्वयं को तैयार नहीं कर सका है । निर्मल वर्मा ने इस दोहरेपन को कई बार, कई तरह से देखा है । ये अन्तर्विरोध भी हो सकते हैं लेकिन बर्लिन के दोनों भाग जो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं वह और भी बहस की मांग करता है । "जहाँ तक इन चीज़ों के प्रति आकर्षण का प्रश्न है, मैंने पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन के लोगों में भेद नहीं देखा, उनके राजनीतिक सिद्धान्त अथवा आध्यात्मिक मान्यताएँ एक-दूसरे से कितनी ही भिन्न क्यों न हों ।"[12] ये चीज़ें क्या हैं -- अमरीकी सिगरेटें, स्कॉच व्हिस्की, फ्रेन्च कोन्याक, नॉयलान कमीज़ें तथा हैनरी मिलर और वात्स्यायन की पुस्तकें । "इसलिए एक प्रश्न बार-बार मँडराता है : क्या पश्चिमी यूरोप बर्लिन में 'स्ट्रिप-टीज़' और नाइट-क्लबों के अलावा, अपनी सांस्कृतिक स्वतंत्रता प्रदर्शित करने का कोई दूसरा बेहतर माध्यम प्रस्तुत नहीं कर सकेगा ? और दूसरा प्रश्न, क्या इन सब चीज़ों का आकर्षण पूर्वी बर्लिन के निवासियों के लिए इतना अधिक गहरा है कि वे कम्युनिस्ट व्यवस्था के सम्मुख एक विकट आर्थिक संकट उपस्थित कर देंगे ?"[13]

लेखक ने स्वयं रूस की यात्रा की । गंगोत्री का जल पवित्र और शुद्ध हो, ऐसी आशा सभी रखते हैं । लेखक ने महसूस किया कि इस प्रकार का जटिल चित्र स्वयं रूस में भी है । "कभी-कभी भ्रम होता कि हम मार्क्सवादी देश में नहीं, माया की लीला-जगत में विचर रहे हैं, कौन-सी सीमा पर कल्पना-लोक शुरू होता है, यथार्थ की बाउण्डरी खत्म होती है, कहना असंभव था । यह माया-संसार अनेक स्तरों पर संचारित होता है । एक तरफ़ पूंजीवादी देशों की घोर-घोर निन्दा, दूसरी तरफ़ इन्हीं देशों की चीज़ों के लिए पागल-सी होड़ । लेनिनग्राड की सड़कों पर चलते हुए हमेशा कुछ युवक पीछे लग जाते थे, "क्या आप डॉलर एक्सचेंज करवायेंगे ?" साधारण दुकानों में चीज़ें मुश्किल से मिलती थीं, लेकिन ऐसी दुकानें भी थीं, जिनमें वोदका चॉकलेट, तरह-तरह की 'शराबें' और फल आसानी से उपलब्ध हो जाते थे - यदि उन्हें खरीदने के लिए डॉलर हों । समाजवादी देश में हर जगह रूबल का यथार्थ डॉलर की माया के आगे नतमस्तक दिखाई देता था ।"[14] एक बातचीत में निर्मल वर्मा ने सोवियत रूस के प्राग पर आक्रमण के दिनों की चर्चा के सन्दर्भ में इतिहास सम्बन्धी अपनी धारणा को रखा है । वे कहते हैं कि इतिहास की धोखाधड़ी के बारे में मन में अनेक शंकाएँ उठती रहती थीं लेकिन एक ऐतिहासिक अनुभव का व्यक्तिगत और निकटतम अनुभव के रूप में आना, पहली बार संभव हुआ । हैबरमास और लियोतार के बीच चली बहस के बारे में उनका कहना है कि उन्नीसवीं सदी की आदर्शमूलक धारणाओं का जो हश्र बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ, उससे इस बहस को एक पीठिका मिलती है यद्यपि दोनों ही उसकी चर्चा नहीं करते । "अभी मैं वह बहस पढ़ रहा था और मैं लियोतार को उद्धृत करना चाहूंगा कि — किसको मालूम था कि समाज को बदलने के लिए मार्क्स के सिद्धान्त का हश्र स्तालिनिज़्म में होगा, किसने सोचा था कि हेगेल की रेशनलिटी का अन्त आश्वित्ज़ के कन्सन्ट्रेशन कैम्प्स में होगा, किसने कभी कल्पना की थी कि जिसे हम बीसवीं सदी की डेमोक्रेटिक सोसायटीज़ कहते हैं वे हिटलर जैसे एक व्यक्ति को जन्म देंगी ?"[15]

उनका कहना है कि स्वतंत्रता, मानवमुक्ति और 'रेशनेलिटी', इतिहास के साथ जुड़ी इन तीनों धारणाओं का अन्त इसी बीसवीं सदी के अन्त में होता है। वे हैबरमास से प्रश्न करते हैं कि चेकोस्लोवाकिया, में, सोवियत संघ में, या जर्मनी में जो कुछ हुआ, इतिहास की इस पीठिका को भूलकर क्या हम किसी तरह का कोई नया स्वप्न, नया कॉन्सेंशस आविष्कृत कर सकते हैं। अडोर्नो ने कहा था कि 'आश्वित्ज़' के बाद कविता नहीं लिखी जा सकती। "आज यहाँ आने से पहले मैं सोच रहा था कि अडोर्नो को कहना चाहिए था कि 'आश्वित्ज़' के बाद इतिहास संभव नहीं होगा।"[16]

इतिहास के बाद थोड़ी चर्चा (सिर्फ चर्चा) संस्कृति की। आइसलैण्ड की यात्रा के दौरान वहाँ पुरुष और स्त्री के बीच जिस तरह का सम्बन्ध उन्होंने देखा, वह उनके लिए स्पृहणीय है। आइसलैण्ड में अवैध बच्चों की संख्या दुनिया में सबसे अधिक है। हर स्त्री और पुरुष अपने लिए जवाबदेह है और नैतिकता उनपर थोपी नहीं गई है। "ऊपर से सनकी दिखने वाले, ये लोग जीवन के कुछ तथ्यों के प्रति कितने 'नॉर्मल' हो सकते हैं, कम-से-कम अपने को 'सहिष्णु' कहने वाले हम भारतीय उनसे काफी कुछ सीख सकते हैं।"[17] 'नॉर्मल' किन चीज़ों के प्रति ? क्या है जो लेखक को आकर्षित करता है ? "... 'अवैध' की कुन्ठा या अपराध भावना न ऐसे बच्चों में न उनकी माताओं में दिखाई देती है। जब एक आइसलैण्डी स्त्री माँ बनती है, तो उसके मित्र और पड़ोसी उसे बधाई देने आते हैं -- वह विवाहित है या नहीं -- यह प्रश्न उन्हें कभी परेशान नहीं करता। अहम् चीज़ यह है कि पड़ोस में अमुक स्त्री माँ बनी है, अन्य प्रश्न निरे अप्रासंगिक हैं।"[18] विकास के साथ संस्कृति के सम्बन्ध पर लेखक ने अपनी सिंगरौली-यात्रा के दौरान सोचा है। मैं संस्कृति सम्बन्धी धारणा में लेखक का अन्तर्विरोध नहीं दिखा रहा हूँ बल्कि यह तथ्य प्रस्तुत कर रहा हूँ कि इस यात्रा में लेखक ने किसी संस्कृति के किसी वर्चस्वशाली रूप के विरोध में बहुलता और सबके प्रति सम्मान की वकालत की है।

एक बिम्ब दिया है उन्होंने --"अमझर की एक दोपहर, पानी से भरे धान के खेत के बीचोंबीच अपने मित्र के कन्धों पर बैठा हूँ, सिर पर चटाई का हैट पहन रखा है और मेरे साथ काली, साफ़, सुन्दर आदिवासी लड़कियां भी खड़ी हैं -- पानी में घुटनों तक डूबी हुई। उन्होंने भी हैट पहन रखा है -- और वे मुझे देखकर खिलखिलाते हुए हँस रही हैं।"[19]

यदि यात्रा-संस्मरणों के अलावा उनके अन्य साहित्य की बात करें लेखक ने सभ्यता-संस्कृति और इतिहास के प्रश्नों पर जितना चिन्तन किया है वह उन्हें हिन्दी-साहित्य के मौलिक चिन्तक-लेखकों की पंक्ति में शामिल करता है। उन्होंने भारतीयता को परिभाषित करने या खोजने की कोशिश की है लेकिन अपनी संस्कृति के कमज़ोर सूत्रों को भी सामने रखा है। उत्तर-औपनिवेशिक भारत में कुछ मौलिक प्रश्नों की ओर उन्होंने संकेत किया है। यहाँ हमारा लक्ष्य उस सम्पूर्ण बहस को समेटना नहीं है बल्कि इस बहस का जो अंश यात्रा - संस्मरणों में आ सका है, उसी पर एक चर्चा करना है। 'केन्द्रीय मानवीय स्थिति' नामक अध्याय में उन्होंने लिखा है --"हम भारतीयों की इस आत्मतुष्टि और आत्मविडम्बना के गहरे ऐतिहासिक कारण हैं।"[20] उन्होंने प्राग में मिले एक भारतीय सज्जन को याद किया है जिन्होंने विस्मय के साथ कहा था कि युद्ध समाप्त हुए एक लम्बा अरसा गुज़र गया लेकिन चेक लेखक इसके पीछे पड़े रहते हैं, क्या इसके बाहर और कोई विषय शेष नहीं रह गया है। इसके अलावा एक और प्रवृत्ति है कि हम समूचे युद्धोत्तर चेक-साहित्य को 'कम्युनिस्ट प्रचारवाद' कहकर आसानी से नज़रअंदाज़ कर देते हैं। लेखक की नज़र में पहला बयान तो आत्मतुष्ट स्वभाव के कारण है और दूसरी स्थिति किसी प्रकार के मौलिक चिन्तन से बचने का एक सुगम तरीक़ा है। "फ़ासिज़्म, युद्ध, यातनागृह ... जब तक हमारे लिए (हम

भारतीयों के लिए} ये शब्द महज़ 'शब्द' ही रहेंगे, हम शायद तब तक कभी युद्धोत्तर यूरोप की मानसिक स्थिति को समझने में समर्थ नहीं हो सकते और उस सीमा तक इन देशों का युद्धोत्तर साहित्य भी हमारे लिए अजनबी बना रहेगा।"[21]

हमारा मौलिक अनुभव क्या है -- पराधीनता और सामन्तवाद तथा इसके उपकरण। एक प्रश्न तो बनता ही है कि क्या स्वातंत्र्योत्तर भारत के साहित्य में यह अनुभव वैसे ही आता है, जैसे युद्धोत्तर चेक-साहित्य में युद्ध? दूसरे शब्दों में, जैसे युद्ध अब तक चेक साहित्यकारों, फ़िल्मकारों और अन्य रचनाकारों को भूल नहीं पाता क्या पराधीनता को हम वैसे ही याद करते हैं? हमारा इतिहास-बोध किस तरह का है? आज हमारे साहित्य की केन्द्रीय चिन्ताएँ क्या हैं और इनका सम्बन्ध हमारे इतिहास-बोध से कैसा है, ज़ाहिर है, ये सब गहरे अर्थ में बहस की माँग करते हैं।

निर्मल जी ने अन्यत्र, कई स्थानों पर कहा है, "जिस दिन हम अकुंठित भाव से, बिना किसी जातीय दम्भ का सहारा लिए, अपनी सदी के गवाह बन सकेंगे, उनकी समस्त पीड़ाओं और अन्तर्विरोध और सम्भावनाओं समेत, उस दिन हम सहज रूप में आधुनिक बन सकेंगे। उसी अर्थ में, जिसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'सहज रूप से भारतीय बनना' कहा है। चेतना के इस बिन्दु पर भारतीयता और आधुनिकता में शायद कोई विरोध नहीं रह सकेगा।"[22] यह आधुनिकता और भी स्पष्ट की जा सकती है। आइसलैण्डी मूर्त्तिकार आस्मुन्दुर स्वेन सॉन से मिलने पर लेखक ने महसूस किया कि उसने आधुनिकता को सही अर्थ में पाया है। अपने आसपास की हर चीज़ और घटना को ऐसे अन्दाज़ से देखने और परखने की क्रिया, जो हमसे पहले की पीढ़ी के पास नहीं था, आधुनिकता है। "सिर्फ़ 'देखना-परखना' ही काफ़ी नहीं, उसके लिए एक बिल्कुल नए सिरे से जीना ज़रूरी है - एक ऐसे स्तर पर, जहाँ हर निगाह एक खोज है और हर खोज अपने में एक छोटी-सी 'साहसिकता'।"[23]

------- x x -------

--- सन्दर्भ ---

1. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -21
2. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -31
3. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -13
4. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -47
5. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -18
6. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -25
7. हर बारिश में, पृ. - 60
8. हर बारिश में, पृ. -63
9. हर बारिश में, पृ. -62
10. हर बारिश में, पृ. -62-63
11. हर बारिश में, पृ. -63-64
12. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -26
13. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -26
14. ढलान से उतरते हुए, पृ. -119
15. पूर्वग्रह 97, मार्च-अप्रैल 1990, पृ. 34
16. पूर्वग्रह 97, मार्च-अप्रैल 1990, पृ. 34-35
17. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -71
18. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -71
19. ढलान से उतरते हुए, पृ. -110
20. हर बारिश में, पृ. -10
21. चीड़ों पर चांदनी, पृ. -164
22. हर बारिश में, पृ. -11
23. चीड़ों पर चांदनी, पृ. 85

------- x x -------

-- अध्याय-6 --

अ न्ति म श ब्द

निर्मल वर्मा के निर्माण में यूरोप की एक बड़ी भूमिका है । चाहे चिन्तक निर्मल वर्मा हों या रचनाकार निर्मल वर्मा – दोनों की निर्मिति यूरोपीय साहित्य और कला तथा वहाँ बिताए दिनों की तासीर से सम्पन्न हुई है । 'चीड़ों पर चांदनी' की भूमिका में उन्होंने अपने बचपन के एक प्रिय और प्रायवेट खेल का ज़िक्र किया है – अगले पांच मिनट बाद मृत्यु को अवश्यंभावी मान लें तो इस बीच कौन-कौन सी चीज़ें याद करेंगे हम । लेखक तब घबरा जाता और हड़बड़ाहट में कुछ भी याद नहीं आता था । अब आज, इस प्रश्न का उत्तर क्या होगा ? "मुझे निश्चय है कि स्मृति अनायास उन वर्षों और उनसे जुड़ी घटनाओं के आसपास घूमती रहेगी जिसके कुछ अंश इस पुस्तक में संगृहीत हैं – यह बात दूसरी है कि पांच मिनिट की 'मुहलत' इस प्रक्रिया में एक-दो घन्टे तक खिंच जाती है । इसके बाद भी मृत्यु का न आना एक चमत्कार-सा ही लगता है ।"[1] ज़ाहिर है ये दिन (या 'वे दिन' ।) लेखक की ज़िन्दगी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण दिन हैं, जी लिया गया इस जीवन को, पर्याप्त उष्णता और संपृक्तता के साथ । अब मृत्यु भी आ जाए तो चमत्कार न लगे, बल्कि न आना चमत्कार लगता है (किसी 'गोदान' की अभिलाषा शेष नहीं है) । मलयज ने भी लिखा है 'निर्मल वर्मा अपने देश वापस लौटकर भी वापस नहीं लौटे हैं ।"[2] मलयज उनकी कहानियों की समीक्षा कर रहे हैं और यह स्वीकार करते हैं कि अतीत का, स्मृतियों का प्रभाव इनकी रचनाओं पर बहुत ज़्यादा है, "हकीकत यह है कि रचना निर्मल वर्मा के लिए स्मृति में ही है ।"[3]

यात्रा-संस्मरणों की परम्परा में निर्मल वर्मा एक नया प्रस्थान बिन्दु बनाते हैं । यात्रा एक साधन है, जो किसी व्यक्ति को तमाम निर्णायक और अभूतपूर्व अवसर तथा स्थितियां प्रदान करती है, इससे किसी यात्री की परीक्षा होती है और तब तय होता है कि यह यात्रा अन्य लोगों द्वारा किए गए प्रयासों से भिन्न है, उत्कृष्ट है, ऐतिहासिक है — या दुहराव और रूटीन मात्र है । निर्मल वर्मा का यात्रा-साहित्य सिर्फ़

यात्राओं का लेखा-जोखा नहीं है, न ठूंठ विवरणों की लिपिकीय दक्षता है, "पिछले सात वर्षों से निर्मल वर्मा यूरोप के अनेक देशों में रहे हैं। इस लम्बे अरसे के दौरान उन्होंने यूरोप की धड़कन, उसके गौरव और शर्म के क्षणों को बहुत नज़दीक से देखा सुना है। इस लिहाज़ से यह पुस्तक एक ऐसी नियतिपूर्ण घड़ी का दस्तावेज है, जब बीसवीं सदी के अनेक काले-उजले पन्ने पहली बार खुले थे। दुबचेक काल का प्राग-वसन्त, सोवियत-स्वप्न का मोहभंग, पेरिस के बेरिकेड़ों पर उगती आकांक्षाएँ - कुछ ऐसी अभूतपूर्व घटनाएँ थीं, जिन्हें हमारी ढलती शताब्दी की छाया में निर्मल वर्मा ने पकड़ने की कोशिश की है, किसी बने-बनाए आइने के माध्यम से नहीं बल्कि सम्पूर्णतया अपनी नंगी आंखों के सहारे। शायद यही कारण है कि पुस्तक के निबन्ध कभी-कभी एक ऐसे 'एक्ज़ाइल' लेखक के रिपोर्ताज जान पड़ते हैं, जिसने 'युद्ध' के मोर्चे पर घायल संस्कृतियों के घावों को जैसा देखा, वैसा ही आंकने की कोशिश की और भारतीय आत्मसंतोष से हटकर, खुद अपने देश की व्यथा को इन घावों में रिसता देखा है।"[4]

निर्मल, शायद हिन्दी के अभी सर्वाधिक समर्थ गद्यकार हैं। संस्मरणों के गद्य से गुज़रता हुआ पाठक महसूस करता है कि वह कविता के प्रकाश से गुज़र रहा है। वे चीज़ों को लेते हैं, ठहरकर क़ायदे से उसके तमाम चेहरे देखते हैं और फिर परिष्कृत कला की संभाल देकर सामने लाते हैं। वातावरण पाठक के मन में अंकित किया जाता है। शब्द, वाक्य यहाँ तक कि घटनाक्रम भी छूट जाता है पर पाठक की स्मृति में अंकित कुछ ब्यौरे नहीं छूटते। कुछ अलक्षित सामान्यतः छोटी-छोटी चीज़ें, अनुभव खण्ड या दृश्य वे पकड़ते हैं और यह भी एक कारण है कि वे पाठक के मन में कुछ रख छोड़ते हैं। जो संसार रचते हैं वह भयंकर, वीभत्स, जुगुप्सा से भरा नहीं होता। एक आत्मीय ऊष्मा व्याप्त होती है - यहाँ तक कि नकारात्मक पक्षों और दुखद क्षणों के रचनात्मक अवतरण में भी। विट् या ह्यूमर को नहीं, अपने बौद्धिक स्तर, सहनशील समझ, व्यापक दृष्टि और कुछ-कुछ मासूमियत को लिए यात्री संसार का साक्षी बनता है। यात्राक्रम

में उन चीज़ों की ओर लेखक का कम ध्यान जाता है जो सामान्य हैं (अलक्षित नहीं), स्थूल हैं और ज़्यादा देखी जाने वाली हैं, जिनसे पाठक अधिक नहीं जुड़ सकता। यात्राएँ साहित्यिक और कलापरक ज़्यादा हैं, राजनीति आती है पर तत्व और मर्म के रूप में। कहने के ढंग में चित्र और ध्वनि समाई रहती है। सादी, लेकिन दुर्लभ उपमाएँ चुनते हैं।

बहुत कुछ अपने में सिमटा और व्यक्तिवादी सफ़र, पूरा समूह फोकस में नहीं होता—लेखक होता है, उसके कुछ अपने होते हैं, बस। लेकिन जैसा कि कहा गया वातावरण फोकस में आता है। यदि समूह की या बड़े समाज की बात हो तो उस समूह के भीतर ही वे अपना वृत्त लेते हैं, अपना कोष्ठक बना लेते हैं, जैसे भीड़ में अकेलापन महसूस किया जाता है। फिर यह भी करते हैं कि यदि यह कोष्ठक नहीं बनाते तो उस बड़े हिस्से या विषय को संचालित करने वाली चेतना को, 'स्पिरिट' को खोजते हैं, या जिन कारणों से वह समूह या दृश्य-समूह उनके लिए महत्त्वपूर्ण हुआ है और उल्लेखनीय हुआ है, उन कारणों पर बातें करते हैं। विस्तार नहीं है, अपव्यय भी नहीं, शीघ्रता नहीं, ज़्यादा नहीं कहते – पर विशेषता इनमें नहीं है, विशेषता है – इतने से ही अघा देने में। अतृप्त नहीं छोड़ते। अपनी क्षमता का ज्ञान निर्मल को है। इनके लिए लेखन 'खाला का घर' नहीं है, "... सुबह जब मैं लिखने बैठता हूँ तो प्रार्थना की मन:स्थिति में, जैसे चर्च में होना चाहता हूँ – सम्पूर्ण रूप से और पूरे तौर से शुद्ध मन निश्छल ; अपनी सारी चेतनाओं सहित ... "[5]

निर्मल ने इच्छा व्यक्त की है कि 'बेतरतीब घुमक्कड़' की तरह वे भारत को घूमना और देखना चाहते हैं, चाहें साल-भर के लिए ही सही। "मैं चलता रहूँ और कोशिश करूँ कुछ अनुभवों को पकड़ने की -- कुछ दृश्यों -- कुछ -- लोगों को पकड़ने की, अफसोस की बात है कि बहुत थोड़े भारतीयों में यह प्रवृत्ति है, भारतीय जीवन के मूल को पकड़ने की। ... गये साल जब मैं कुंभ गया था तो मेले से वापस आने के बाद मुझे बहुत प्रेरणा मिली की मैं ऐसा कुछ करूँ, कथानक या सामग्री जुटाने के इरादे से नहीं बल्कि जो अनुभव किया उसे ही लिखने की दृष्टि से, अपने अनुभव को 'डाक्यूमेन्ट' करने के ख़्याल से ... ।"[6]

इस पर बहस हो सकती है कि नर्मल की विशिष्ट कला क्या अपने लिए विशिष्ट पाठक नहीं खोजती ? कुरूपता, असंगति और भयावहता को इनके अर्थ से दूर ले जाकर एक लयात्मक भाषा में कलावतरित करना भी प्रश्न उठाता है । आग की सार्थकता इसकी दाहकता में ही है, दूसरा कोई गुण इसे आग नहीं रहने देगा । वे अपने तय किए हुए निर्मित पथों के यात्री बने रहते हैं और थोड़ा इधर-उधर जाकर बीहड़ों और दुर्गमों को देखने का साहस नहीं करते । जैसे कोई सुधी आदमी किसी दीवार पर लगी पेन्टिंग को ग़ौर से देख रहा हो, उसकी बारीकियों और अर्थध्वनियों पर मुग्ध अथवा दग्ध हो रहा हो और बग़ल में खड़े किसी भिखारी की गिड़-गिड़ाहट उसके कानों तक न पहुंचती हो ।

लगता है सचमुच एक यात्री का अस्थायीपन इनमें है, इतना कि सम्बन्धों में भी । यह यदि निर्ममता है तो क्या एक संवेदनशील रचनाकार निर्मम होने योग्य है ? एक सीमा के बाद लेखक आगे नहीं जाना चाहता । और मलयज ने उनके गद्य के बारे में जो पर्यवेक्षण किया है, उसे उद्धृत करने का लोभ संवरण करना मुश्किल है – "समर्थ गद्य हाँ, पर सशक्तगद्य, नहीं । क्योंकि इस गद्य की मांस-पेशियां न लड़ने-भिड़ने से, गैर-तत्व के साथ जोर-आजमाइश न करने के कारण चीमड़ हो गई हैं, मोम की तरह मृदु चमक लिए, पर चीमड़ । ऐसा गद्य आपमें ऐन्द्रिक संवेदन की फुरफुरी दौड़ा देता है, एक सेन्सुअस उत्तेजन जगाता है, आपकी नसों को झनझनाता नहीं, झिंझोड़ता नहीं, मथता नहीं । आप इस गद्य से अगर प्रभावित होते हैं तो उदास हो जाते हैं, अन्तर्मुख हो जाते हैं । कुछ सोचने-से लगते हैं, आपमें बहुत कुछ धीरे-धीरे पिघलने लगता है । आप उससे फड़कते नहीं, चकित नहीं होते, उठते नहीं, बस डूबने लगते हैं, उड़ते नहीं, सिकुड़ते हैं, फैलते नहीं, बँधने लगते हैं, खुलते नहीं ।"[7]

ये यात्रा-संस्मरण स्वयं अपना अतिक्रमण करते हैं और अन्य विधाओं को छूते चलते हैं । क्योंकि एक रचनाकार द्वारा अपनी शती को, अपनी दुनिया को जानने तथा अनुभव करने का यह प्रयास अपने विस्तार और बहुआयामी जटिलता में अतिक्रमण को संभव बनाता है । और, अन्ततः लेखक का आत्म-कथन -- "अरसे बाद अपने इन स्मृति-खण्डों को दोबारा पढ़ते समय मुझे

एक अजीब-सा सूनापन अनुभव होता रहा है - कुछ वैसा ही रीता अनुभव, जब हम किसी ज़िन्दा फड़फड़ाते पक्षी को क्षण-भर पकड़कर छोड़ देते हैं - उसकी देह हमसे अलग हो जाती है लेकिन देर तक हथेलियों पर उसकी धड़कन महसूस होती रहती है ।"[8] क्या हमारा, पाठक का भी यही अनुभव और उपलब्धि नहीं है ? क्या यह उपलब्धि कम है ?

——— xx ———

--- सन्दर्भ ---

1. चीड़ों पर चांदनी, भूमिका ।

2. निर्मल वर्मा : सृजन और चिन्तन, पृ० 41

3. " " "

4. हर बारिश में, फ्लैप-टिप्पणी

5. पूर्वग्रह, जुलाई-अक्तूबर 1978, पृ०-24-25

6. " " "

7. निर्मल वर्मा : सृजन और चिन्तन, पृ० 44

8. चीड़ों पर चांदनी, भूमिका ।

ग्रन्थानुक्रमणिका

परिशिष्ट 'क'

आधारग्रन्थ व पत्रिका

1. चीड़ों पर चांदनी – राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1995
2. हर बारिश में – राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1970
3. कला का जोखिम – राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984
4. ढलान से उतरते हुए – राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985
5. वागर्थ – भारतीय भाषा परिषद् प्रकाशन, अक्तूबर 1996

परिशिष्ट 'ख'

सहायक ग्रन्थ

1. अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद ? नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
2. अज्ञेय, एक बून्द सहसा उछली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988
3. डा. नगेन्द्र (सम्पादित), हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1991
4. डा. प्रेमसिंह (सम्पादित), निर्मल वर्मा : सृजन और चिन्तन, फिफ्थ डायमेंशन पब्लिकेशन, दिल्ली, 1989
5. राहुल सांकृत्यायन, घुमक्कड़ शास्त्र, किताब महल, इलाहाबाद, 1978
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि पहला भाग, हिन्दी साहित्य सरोवर, आगरा, 1992
7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2050 वि.
8. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1981
9. हेमन्त शर्मा (सम्पादित), भारतेन्दु समग्र, प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1989
10. हरिश्चन्द्र वर्मा (सम्पादित) मध्यकालीन भारत, दोनों खण्ड, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि., 1993
11. Edward W.Saeed, ORIENTALISM, Routledge & Kegan Paul, London and Henley F.F.-1978

परिशिष्ट 'ग'

पत्र-पत्रिकाएँ

1. जनसत्ता 'सबरंग', 10 नवम्बर, 1996
2. The Pioneer , 12 सितम्बर 1996
3. TLS , जुलाई 26, 96 -ф-
4. पूर्वग्रह के अंक - जुलाई-अक्तूबर 1978, जनवरी-फरवरी 1985 तथा मार्च-अप्रैल 1990

सम्पादक - अशोक वाजपेयी, भारत भवन, भोपाल

-ф- The Times Literary Supplement, Admiral House, London.

—x—